ला. न्शीराम जी (गृहस्थ)

महात्मा मुन्शीराम जी (वानप्रस्थ)

स्वामी श्रद्धानन्द जी (संन्यासी)

ला० मुन्शीराम जी (गृहस्थ)   महात्मा मुन्शीराम जी (वानप्रस्थ)   स्वामी श्रद्धानन्द जी (संन्यासी)

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ सं०
१. नव वन्दन हे नाथ करें हम	२६१
२. कुलपिता श्रद्धानन्द का दीक्षान्त-संस्कार में स्नातकों को उपदेश	२६२
३ कुलपिता श्रद्धानन्द का कुलजन्मोत्सव के समय कुल-पुत्रों को उपदेश	२६४
४. श्रद्धानन्द का बलिदान (कविता)— श्रीयुत बद्रीनाथ जी भट्ट	२६५
५ स्वामी श्रद्धानन्द— डा० रवीन्द्रनाथ जी ठाकुर	२६६
६. स्वामी श्रद्धानन्द की यादगार में— डा० तारकनाथदास जी एम. ए.	२६९
७. स्वामी श्रद्धानन्द के चरणों में शोकाञ्जलि (कविता)— श्रीहरि जी	२७९
८. गुरुकुल का महत्त्व—श्रीमान् राजाधिराज नाहरसिंह जी शाहपुराधीश	२७२
९. संस्कृत, संस्कृति, संस्कार और गुरुकुल— श्री राज्यरत्न आत्माराम जी	२७३
१०. स्वामी जी के चरणों में श्रद्धाञ्जलि (कविता)— श्री पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति	२७७
११. ब्रह्मचर्य—श्री प्रो० धर्मदत्त जी विद्यालङ्कार	२७८
१२. मंत्र—साधन (कविता) साहित्य रत्न श्री अयोध्यासिंह जी उपाध्याय	२८८
१३ सहजात प्रवृत्तियें और उनका शिक्षा में स्थान— श्री पं० प्रियव्रत जी विद्यालंकार	२९०
१४. कुल-भूमि (कविता) श्रीहरि जी	२९४
१५. कुल की कहानी (कविता)	२९५
१६ आश्चर्यमय गुरुकुल	२९८
१७. मेरा तपोवन (कविता) श्री पं० विद्यानिधि जी सिद्धान्तालङ्कार	३०२
१८. गुरुकुल-शिक्षा-प्रणाली—श्री प्रो० चन्द्रमणि जी विद्यालङ्कार	३०३
१९. कुल-वन्दना (गीति)	३०६
२०. गुरुकुल-वृक्ष—श्री प्रो० चन्द्रमणि जी	३०७
२१. कुल-गीत	३०८
२२. गुरुकुल कांगड़ी की शाखायें	३०९-३१७
(१) शाखा-गुरुकुल मुलतान	३०९
(२) शाखा-गुरुकुल कुरुक्षेत्र	३१०
(३) शाखा-गुरुकुल मटिण्डु	३१२
(४) शाखा-गुरुकुल रायकोट	३१३
(५) शाखा-गुरुकुल सूपा	३१५
(६) शाखा-गुरुकुल भज्झर	३१६
(७) कन्या-गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ	३१७
२३. गुरुकुल में प्रविष्ट होते हुए पुत्र को पिता का उपदेश—(कविता) श्रीकण्ठ	३१८
२४. महात्मा गुरुकुल और मिस्टर कालेज की बातचीत—श्रीपादराव सातवलेकर जी	३२२
२५. मेरा स्वर्ग (कविता) श्री पं० विद्याधर जी विद्यालङ्कार	३२६
२६. विद्वानों की दृष्टि में गुरुकुल	३२९
२७, ऋषि के जीवन पर एक पृष्ठ— श्रीयुत् प्रेमचन्द जी	३३०
२८. गुरुकुल द्वारा उत्पन्न साहित्य	३३३

प्रो० सत्यव्रत जी प्रिन्टर तथा पब्लिशर के लिये गुरुकुल यन्त्रालय कांगड़ी में छपा

शहीद स्वामी श्रद्धानन्द महाराज के शव का जलूस

वर्ष ३, अङ्क ९,१०] फाल्गुण, चैत्र [पूर्ण संख्या ३३, ३४

अलङ्कार

तथा

गुरुकुल-समाचार

स्नातक-मण्डल गुरुकुल-कांगड़ी का मुख-पत्र

ईळते त्वामवस्यवः कण्वासो वृक्तबर्हिषः।
हविष्मन्तो अलंकृतः॥ ऋ० १. १४. ५।

तव वन्दन हे नाथ ! करें हम ।

तव चरणन की छाया पाकर,
शीतल सुख उपभोग करें हम ॥

भारत-जननी की सेवा का,
व्रत भारी व्रत नाथ धरें हम ॥

माता का दुःख हरने के हित,
न्योछावर निज प्राण करें हम ॥

पाप-शैल को तोड़ गिरावें,
वेदाज्ञा इक सीस धरें हम ॥

फूले गुरुकुल की फुलवारी,
विद्या-मधु का पान करें हम ॥

राग द्वेष को दूर भगाकर,
प्रेम-मन्त्र का जाप करें हम ॥

सायं प्रातः तुझ को ध्यावें,
दुःख-सागर के पार तरें हम ॥

कुल-पिता श्रद्धानन्द का दीक्षान्तसंस्कार में स्नातकों को उपदेश।

पुत्रो ! आज मैं तुम्हें उन बन्धनों से मुक्त करता हूं, जिन के अनुसार गुरुकुल में चलना तुम्हारे लिए आवश्यक था। पर यह न समझना कि अब तुम्हारे लिए कोई बन्धन नहीं है। प्राचीन काल से हमारे ऋषियों ने कुछ बन्धन बांध रक्खे हैं, उन्हें मैं आज तुम्हें सुनाना चाहता हूं। इन बन्धनों के पालन करने में किसी का तुम पर दबाव नहीं, इसी लिए ये बन्धन और भी कड़े हैं। ये बन्धन उन उपनिषद् वाक्यों में वर्णित हैं, जिन्हें आज से हज़ारों वर्ष पहले इस पवित्र भूमि में प्रत्येक आचार्य अपने स्नातकों को विद्या-समाप्ति के समय सुनाया करता था। उन्हीं पुराने आचार्यों का प्रतिनिधि होकर मैं तुम्हें वे वाक्य सुनाता हूं।

पुत्रो ! परमात्मा सत्यस्वरूप है। उस के प्यारे बनने के लिए अपने जीवन को सत्यस्वरूप बनाओ। तुम्हारे मन में, तुम्हारी वाणी में, और तुम्हारी क्रिया में सत्य हो।

धर्म-मर्यादा का उल्लंघन मत करो। इस मर्यादा का साक्षि अन्तःकरण ही है, बाहर से कोई धर्म बतलाने वाला नहीं है। जो हृदय परमात्मा का आसन है, वही तुम्हें धर्म की मर्यादा बतलादेगा। अपने आत्मा की वाणी को सुनो और उसके अनुसार चलो।

स्वाध्याय से कभी मुख न मोड़ो। वह तुम्हें प्रमाद से बचायेगा।

जिस आचार्य ने तुम्हारी इतने दिनों तक रक्षा की, उसके प्रति तुम्हारा जो कर्तव्य है, उसे अपने हृदय से पूछो। यह कुल तुम्हारा आचार्य है। मैं नहीं जानता कि तुम इसे क्या दक्षिणा देना चाहते हो। मैं तुम से केवल एक ही दक्षिणा मांगता हूं। मैं चाहता हूं कि तुम्हारा ऐसा कोई काम न हो, जिस से तुम्हें अपने आत्मा और परमात्मा के सामने लज्जित होना पड़े।

तुम में से अब कई गृहस्थ में प्रवेश करेंगे। उनसे मैं कहता हूं कि पांचों यज्ञों के करने में कभी प्रमाद न करना।

माता पिता आचार्य और अतिथि, ये तुम्हारे देवता हैं, इनकी सदा शुश्रूषा करना धर्म समझो।

पुराने ऋषि बड़े उदार और निरभिमान थे। वे कभी पूर्ण या दोषरहित होने का दावा नहीं करते थे। उन्हीं का प्रतिनिधि होकर मैं तुम्हें कहता हूं कि हमारे अच्छे गुणों का अनुकरण करो, और दोषों को छोड़ दो। इस संसार की अँधियारी में किसी को अपना ज्योतिः-स्तम्भ बनाओ। पढ़ा पढ़ाया कुछ अंश तक पथ-दर्शक होता है, पर सच्चे पथ दर्शक वे ही महापुरुष होते हैं, जो अपना नाम संसार में छोड़ जाते हैं। वे जीवन-समुद्र में ज्योतिःस्तम्भ का काम देते हैं। ऐसे आत्मत्यागी- सत्यवादी और पक्षपात रहित महापुरुषों के, चाहे वे जीवित हों या ऐतिहासिक, पीछे चलो।

लेना तो सभी संसार जानता है, तुम इस योग्य हुए हो कि अपनी बुद्धि और विद्या में से कुछ दे सको। जो तुम्हारे पास है, उसे उदारता से फैलाओ। हाथ खुला रक्खो, मुट्ठी को बन्द न होने दो। जो सरोवर भरता है वह फैलाता है, यह स्वाभाविक नियम है।

जिस भूमि की मिट्टी से तुम्हारा देह बना है, जिस की गङ्गा का तुमने निर्मल जल पीया है, और जिसके गौरव के सामने संसार का कोई देश ठहर नहीं सकता, उस पवित्र भारत-भूमि में रहते हुए तुम उसके यश को उज्ज्वल करोगे, यह मुझे पूरी आशा है। इस के साथ ही जिस सरस्वती की कोख में तुमने दूसरा जन्म लिया है, उसे मत भूलना। किसी भी काम को करते हुए सावित्री माता की उपासना से विमुख न होना।

यह मैंने संक्षेप से उन वाक्यों का सारांश सुना दिया है, जो कि सहस्रों वर्षों से इस पवित्र भूमि में गूंजते रहे हैं। इन्हें गुरु-मंत्र समझो और अपना पथ-दर्शक बनाओ।

इस के अतिरिक्त मेरा भी तुम्हारे साथ कई वर्षों का संबन्ध रहा है। मैं तुम से गुरुदक्षिणा नहीं मांगता। गुरु-दक्षिणा देना तुम्हारा धर्म है, मांगना मेरा धर्म नहीं। मैं तुम से यह भी नहीं पूछता कि तुम्हारे राजनैतिक सामाजिक या मानसिक विचार क्या क्या हैं। मैं केवल तुम से यही पूछता हूं कि क्या तुम्हारे सब काम सत्य पर आश्रित हैं

या नहीं । स्मरण रक्खो, यह संसार सत्य पर आश्रित है । सत्य के बिना राजनीति धिक्कारने योग्य है, सत्य के बिना समाज के नियम पददलित करने योग्य हैं । यदि सत्य तुम्हारे जीवन का अवलम्बन है, तो मुझे न कोई चिन्ता है और नाही कुछ मांगना है । +

कुलपिता श्रद्धानन्द का कुलजन्मोत्सव
के समय कुलपुत्रों को उपदेश

पुत्रो ! आज मुझे इतनी प्रसन्नता है कि तुम उसका अनुभव नहीं कर सकते। मुझे अपने जीवन में जिस बात के देखने की आशा नहीं थी, उसे मैंने देख लिया । यदि आज मेरे प्राण भी चलने को तय्यार हों तो मैं बड़ी खुशी से उन्हें आज्ञा देसकता हूं । इस आनन्द का कारण मैं बताना निरर्थक समझता हूं, तुममें से प्रत्येक उसे अनुभव कर रहा है । लोग समझा करते थे कि हम दिमागों को परतन्त्र बनाना चाहते हैं, परन्तु अब लोग देख रहे हैं कि यदि कोई ऐसा स्थान है जहां स्वतन्त्रता नहीं रुक सकती तो वह यही स्थान है । मेरा अपने ब्रह्मचारियों को केवल एक ही उपदेश है; मत देखो कि लोग तुम्हें क्या कहते हैं, सत्य की दृढ़ता को पकड़ो । सारे संसार का सत्य ही आधार है । यदि तुम्हारा मन वचन और कर्म सत्यमय है, तो समझो कि तुम्हारा उद्देश्य पूरा होगया । प्रसिद्धि के पीछे भाग कर कोई काम मत करो । प्रसिद्धि के पीछे भागने से किसी की प्रसिद्धि नहीं हुई । अपने सामने एक उद्देश्य रखलो, उसी में लग जाओ, फिर गिरावट असम्भव है । उपदेशक बनो या मत बनो, पर एक बात याद रखो, बनावटी मत बनो । सब को परमात्मा वाणी की शक्ति या उपदेश देने की शक्ति नहीं देता । वाणी न हो न सही, किन्तु आचरण सत्यमय हो । नट न बनो, न इस संसार को नाट्यशाला बनाओ । स्वच्छ जीवन रक्खो । यदि इस प्रकार का स्नातकों का आचरण होगा तो मेरा पूरा सन्तोष है । *

+ यह उपदेश कुलपिता ने दूसरे दीक्षान्त-संस्कार में २८ मार्च १९१४ ई० को दिया था।

* यह उपदेश कुलपिता ने चतुर्थ कुलजन्मोत्सव के समय फाल्गुन बदी १०, सम्वत् १९७० को दिया था।

श्रद्धानन्द का बलिदान

काँप गयी है धरा, देख कर तेरा आज बलिदान ।
सहम गया आकाश, बढ़ा जब तेरा उसकी ओर विमान ॥

देख रही है भौचक दुनिया, आर्यवीर क्या करते हैं ।
धार्मिक युद्ध-क्षेत्र में कैसे हँसते हँसते मरते हैं ॥

जितना पीछे इन्हें धकेलो उतने आगे बढ़ते हैं ।
जितना ही पैरों से कुचलो उतने सिर पर चढ़ते हैं ॥

हुई संगठन की जय सच्ची, हुई शुद्धि की पूरी जीत ।
घर घर में क्या, हृदय हृदय में, गाये जाते इनके गीत ॥

कर सकता था जीते जी जो, मर कर उससे अधिक किया ।
अमर बने रहने का सीधा पथ जो हम को दिखा दिया ॥

एक एक शोणित-कण से जनमेंगे सौ सौ श्रद्धानन्द ।
जो पल भर में आर्यजाति के काटेंगे दुखदायी फन्द ॥

कौन सदा जीवित रहने को इस दुनिया में आया है ।
धन्य वही है, आत्मत्याग से जिसने सुयश कमाया है ॥

जाओ स्वामी, पुनर्जन्म ले अबकी जब तुम आओगे ।
तब सचमुच ही काम अधूरा पूर्ण हो चुका पाओगे ॥

आँखों में ये अश्रु नहीं हैं हृदय स्वच्छ करते हैं हम ।
जान हथेली पर लेकर अब पग आगे धरते हैं हम ॥

होगा जीवन धन्य, धर्म पर जावेंगे जब अपने प्राण ।
धार्मिकता की विडम्बना से मातृभूमि पावेगी त्राण ॥

श्रीयुत बद्रीनाथ जी भट्ट

स्वामी श्रद्धानन्द

(डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर शान्तिनिकेतन)

हमारे देश में जो सत्य—व्रत के ग्रहण करने के अधिकारी हैं, एवं इस व्रत के लिये प्राण देकर जो पालन करने की शक्ति रखते हैं, उनकी संख्या बहुत ही कम होने के कारण हमारे देश की इतनी दुर्गति है। ऐसी अवस्था जहां पर है, वहां पर स्वामी श्रद्धानन्द से इतने बड़े वीर की इस प्रकार मृत्यु से कितनी हानि हुई होगी इसके वर्णन करने की आवश्यकता नहीं। परन्तु इसके मध्य एक बात अवश्य है कि उनकी मृत्यु कितनी ही शोचनीय हुई हो, किन्तु इस मृत्यु ने उनके प्राण एवं उनके चरित्र को उतना ही महान् बना दिया है। बार बार इतिहास में देखा जाता है कि जिन्हों ने अपना सब कुछ देकर कल्याण-व्रत को ग्रहण किया है, अपमान और अपमृत्यु ने उनके ललाट पर जय-तिलक की तरह अपना स्थान जमाया है। महापुरुष आते हैं प्राण की मृत्यु के ऊपर जय करने के लिये, सत्य को जीवन की सामग्री बनाने के लिये। हमारे खाद्य द्रव्य में प्राण देने का जो उपकरण है, वह वायु में भी है, एवं वैज्ञानिक परीक्षागार में भी है। परन्तु जब तक वह उद्भिज प्राणी में जीव आकार नहीं धारण करता तब तक प्राण की पुष्टि नहीं होती। सत्य के सम्बन्ध में भी यही बात है। केवल वाक्यों के द्वारा आकर्षण कर उसे जीवन-गत करने की शक्ति कितनों में है? सत्य को जानते बहुत हैं, किन्तु उसको मानता वही है जो विशेष शक्तिमान है। प्राणों की आहुति के द्वारा मान कर ही हम उस सत्य को सब मनुष्यों के लिये उपयोगी बना देते हैं। यह मानकर चलने की शक्ति ही एक सुन्दर वस्तु है। इस शक्ति की सम्पद् को जो समाज को अर्पित करते हैं उन्हीं के दान का महामूल्य है। सत्य के प्रति उसी निष्ठा का आदर्श श्रद्धानन्द इस दुर्बल देश को देगये हैं। अपनी साधना-परिचय के उपयोगी जिस नाम को उन्होंने ग्रहण किया था वही सार्थक हुआ। सत्य की उन्होंने श्रद्धा की थी। इसी श्रद्धा के मध्य सृष्टि-शक्ति है। इसी शक्ति के द्वारा वे अपनी साधना को मूर्ति के रूप में सजीव कर गये हैं। इसी से उनकी मृत्यु भी प्रकाशमय हो उनकी श्रद्धा को उस भयहीन दोषहीन तथा क्लांतिहीन अमृतमय छवि को उज्वल कर प्रकाशित कराती है। सत्य के प्रति श्रद्धा के इस श्रद्धानन्द को उन के चरित्र के मध्य आज हम सार्थक आकार में देख रहे हैं। यह सार्थकता बाह्य

फल स्वरूप नहीं है, अपितु निज की ही अकृत्रिम वास्तविकता में है।

विधाता जब दुःख को हमारे पास भेजता है तब वह अपने साथ एक प्रश्न लेकर आता है। वह हम से पूछता है कि तुम हम को किस भाव से ग्रहण करोगे? विपद आवेगी नहीं ऐसा नहीं हो सकता— सङ्कट का समय उपस्थित होता है, उद्धार का कोई भी उपाय नहीं रहता, किन्तु जिस प्रकार विपद् का हम व्यवहार करते हैं इसी के ऊपर प्रश्न का सदुत्तर निर्भर है। किसी पाप के उपस्थित होने पर हम उस से डरें वा उसके सन्मुख अपना सिर झुकावें? अथवा उस पाप के विरुद्ध पाप ही को सन्मुखीन करें, मृत्यु के आघात दुःख के आघात के ऊपर रिपु की उन्मत्तता को जागृत करें? शिशु के आचरण में देखा जाता है कि जब वह गिरता है तब वह उल्टे जमीन ही को मारता है। वह जितना ही मारता है, फलस्वरूप उसको उलटा ही लगाता है। परन्तु यदि किसी वयस्क को ठोकर लगता है तो वह सोचता है कि वह किस प्रकार दूर की जावे। परन्तु हम देखते हैं कि किसी समय बाहर के आकस्मिक आघात की चमक में मनुष्य भी शिशु की बुद्धि वाला हो जाता है। वह उस समय सोचता है कि धैर्य का अवलम्बन करना ही कापुरुषता है, क्रोध का प्रकाश करना ही पौरुष है। हम यह स्वीकार करते हैं कि आज दिन स्वभावतः ही क्रोध आवेगा, मानव धर्म तो बिल्कुल छोड़ा नहीं जा सकता। किन्तु यदि क्रोध से अभिभूत हों तो वह भी मानव-धर्म नहीं है। आग के लग जाने पर यदि सब कुछ भस्म हो जावे तो आग की रुद्रता लेकर आलोचना करना वृथा है। विपद सभी पर आती है, जिनके पास उसके प्रतिकार के उपाय नहीं हैं वे भी दोषी हैं।

भारतवर्ष के अधिवासियों के मुख्यतया दो भाग हैं- हिन्दू और मुसलमान। यदि हम यह समझें कि मुसलमानों को एक ताक में रख देश की सभी मङ्गल चेष्टाओं में सफल होंगे तो यह भी एक बहुत भारी भूल है। हमारे लिये सब से ज्यादा अमंगल और दुर्गति का विषय यह है कि मनुष्य मनुष्य के पास रहना है किन्तु उनके मध्य किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रहता। विदेशी राज्य में राजपुरुषों के साथ हमारा एक वाह्य योग-दल है, किन्तु आन्तरिक सम्बन्ध नहीं रहता। विदेशी राजत्व में यही हमारे लिये सब से अधिक पीड़ाजनक है।

इसी से आज हमें देखना होगा कि हमारे हिन्दू समाज में कहां कौन सा छिद्र है, कौन सा पाप है, अति निर्भय भाव से उस पर हमें आक्रमण करना होगा। इसी उद्देश्य को लेकर आज हिन्दू समाज को आवाहन करना

होगा, कहना होगा हम पीड़ित हुए हैं हम लज्जित हुए हैं, बाहर के आघात से नहीं किन्तु अपने भीतर के पापों के फलस्वरूप। आओ, आज हम सब मिल कर उस पाप को दूर करें। परन्तु हमारे लिये यह बहुत सहल बात नहीं है, क्यों कि हमारे भीतर बहुत प्राचीन अभ्यस्त भेद-बुद्धि भरी हुई है। बाहर बहुत पुरानी भेद की प्राचीर है। मुसलमानों ने जिस समय किसी उद्देश्य को लेकर मुसलमान समाज को आवाहन किया है, उन्हें कोई भी बाधा नहीं पड़ी। एक ईश्वर के नाम पर 'अल्लाह हो अकबर' कह कर उन्हें बुलाया है। फिर आज हम सब बुलावेंगे हिन्दू आओ, तब कौन आवेंगे? हमारे मध्य कितने छोटे छोटे सम्प्रदाय है, कितनी प्रादेशिकता है, उनको पार कर कौन आवेगा? कितनी आफ़तें पड़ीं परन्तु कभी भी तो हम एकत्रित नहीं हुए। बाहर से जब पहला वार मुहम्मद गौरी का हुआ था, तब भी तो उस आसन्न विपद् के दिन हिन्दू एकत्र नहीं हुए थे। इसके बाद मन्दिर के बाद मन्दिर लुटने लगे, देव-मूर्तियें झूठी होने लगीं, तब वे अच्छी तरह लड़े हैं, मारे गये हैं, खण्ड खण्ड होकर युद्ध करके मरे हैं, किन्तु एकत्र नहीं हुए। अलग २ थे, इसी लिये मारे गये। युग युग में हमारे इसके प्रमाण हैं। हां, सिक्खों ने अवश्य एक समय इस बाधा को दूर किया था। परन्तु सिक्खों ने जिसके द्वारा इस बाधा को दूर किया वह सिक्ख धर्म था। पञ्जाब में सिक्ख धर्म के आवाहन करने पर जाट-प्रकृति सभी जातियां एक झण्डे के नीचे एकत्रित हो सकीं थी। एवं, वे ही धर्म की रक्षा करने के लिये खड़ी हो सकीं थी। शिवाजी ने भी एक समय धर्मराज्य की स्थापना की नींव डाली थी। उनकी जो असाधारण शक्ति थी उसी के द्वारा वे समस्त मराठों को एकत्र कर सके थे। इसी सम्मिलित शक्ति ने भारत वर्ष को अपनाकर छोड़ा था। घोड़े के साथ जब घुड़सवार का सामञ्जस्य रहता है तभी वह घोड़ा किसी भी तरह नहीं रुकता। शिवाजी के साथ होकर जो उस दिन लड़े थे, उनके साथ भी शिवाजी का ऐसा ही सामञ्जस्य था। बाद में ऐसा सम्बन्ध नहीं रहा। पेशवाओं के मन में आचरण में भेद-बुद्धि का उदय हुआ, और इसी के फलस्वरूप उनका पतन भी हुआ। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि यह जो हमने भेद-बुद्धि के पाप को पाल रखा है, यह अत्यन्त भयङ्कर है। पाप का प्रधान आश्रय दुर्बल के मध्य है। अत एव यदि मुसलमान हमें मारते हैं और हम यदि उसे पड़े पड़े सह रहे हैं, तो यह केवल सम्भव हुआ है हमारी दुर्बलता के कारण। हमारे लिये, एवं

स्वामी जी की चिता ज्वाला

वीर स्नातक धर्मपाल विद्यालंकार

स्वामी भक्त सेवक धर्मसिंह

Punjab Fine Art Press Calcutta.
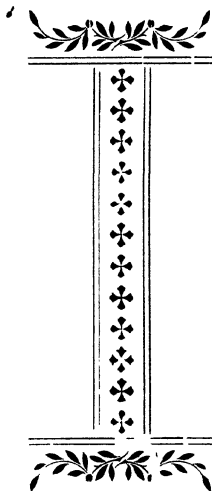
प्रतिवेशियों के लिये भी हमें अपनी दुर्बलता को दूर करना होगा। हम प्रतिवेशियों के निकट अपील करते हैं कि तुम इतने क्रूर मत बनो, अपनी उन्नति करो। नरहत्या के ऊपर किसी भी धर्म की भित्ति स्थापित नहीं की जा सकती। परन्तु यह अपील इसी दुर्बलता का रोना है। जिस प्रकार वायुमण्डल के घिर आने पर झड़ी आप ही आरम्भ हो जाती है, धर्म की दुहाई दे उसे कोई बाधा नहीं दे सकता, उसी प्रकार दुर्बलता के पाल रखने पर अत्याचार भी होने लगते हैं, उनमें कोई बाधा नहीं पहुंचा सकता। कुछ समय के लिये एक उपलक्ष्य को लेकर परस्पर में कृत्रिम बन्धुता हो सकती है, किन्तु चिरकाल के लिये नहीं हो सकती।

आज हमारे अनुताप का दिन है, आज अपराध का प्रायश्चित्त करना होगा। सत्यमय प्रायश्चित्त यदि हम करेंगे तभी शत्रु हमारा मित्र हो सकेगा, रुद्र हमारे प्रति प्रसन्न होंगे।

स्वामी श्रद्धानन्द जी की यादगार में

(लेखक श्रीयुत डा० तारकानाथदास० एम०ए०, पी०एच० डी०)

एक आततायी की गोली ने ऋषि श्रद्धानन्द को हम से छीन लिया। आप का भौतिक देह हम से बिछुड़ गया परन्तु आपकी आत्मा हमारे बीच में ही है। आज श्री स्वामी जी के भौतिक वियोग पर मैं उनकी आत्मा से और भी निकट सम्बन्ध का अनुभव कर रहा हूं। मेरे लिये वह ऋषि 'दधीचि' थे जिन्होंने धर्म-वेदी पर जीवन की अन्तिम आहुति भी दे डाली। वीरता के वह साक्षात् अवतार थे। हिन्दुओं की निर्बलताओं व कुरीतियों को दूर करने में उनसा पराक्रमी कोई नज़र नहीं आता था। उनका मिशन करोड़ों पतितों और मनुष्यता के जन्मसिद्ध अधिकारों से वंचित हिन्दु भाइयों का उद्धार करना ही न था, अपितु उनका पवित्र मिशन उन विधर्मियों को, जो ऋषि-सन्तान होते हुए भी तलवार के बल पर मुसलमान बनाये गये, शुद्ध करके हिन्दू धर्म में फिर से दीक्षित करने का था। सारांश में उन्होंने हिन्दुओं के धार्मिक सामाजिक तथा राजनैतिक उत्थान के लिये जी जान से कोशिश की और अपने उद्योग में सफल हुए। भारतीय राष्ट्र के निर्माण के लिये जिन साधनों का उन्होंने सहारा लिया था, मैं उनकी गहराई में नहीं जाता, परन्तु इतना अवश्य कहूंगा कि वह हिन्दुओं के उन शहीदों में से जिन के नाम पर हिन्दू जाति गर्व करती है श्रेष्ठतम थे और भारतीय राष्ट्र के निर्माताओं में सब से उत्कृष्ट थे।

हिन्दूओं के कुछ राजनीतिज्ञों को

हिम्मत नहीं हुई कि वह शुद्धि और अछूतोद्धार के पवित्र कार्य में महान् स्वामी का हाथ बटा सकें, क्यों कि वह विधर्मियों की धर्मान्धता से भय खाते थे। ऐसे राजनीतिज्ञों ने उस महान् स्वामी के महान् कार्यों का ज़ाहिरा और पोशीदा तौर पर विरोध करके भारतवर्ष की राष्ट्रीय एकता को भारी नुकसान पहुंचाया है, और एकता के आधारभूत सिद्धान्त धार्मिक सहिष्णुता के कायम होने में बड़ी भारी रुकावट डाली है। उम्मेद् है कि ऐसे अदूरदर्शी राजनीतिज्ञ अपनी आंखें खोलेंगे और स्वामी जी के कार्यों में पूरा सहयोग देकर इस पाप का प्रायश्चित करेंगे।

उस महान् व्यक्ति की स्मृति को ताजा बनाये रखने का एक ही उपाय है, और वह यह कि उन द्वारा संचालित कार्यों को द्विगुण उत्साहसे चलाया जाये। शुद्धि और संगठन के कार्यों के अतिरिक्त २५ करोड़ हिन्दुओं को एक ही छत्रच्छाया के नीचे लाना भी उनका उद्देश्य था। इस उद्देश्य के लिये 'स्वामी श्रद्धानन्द-दिवस' मनाया जाना चाहिये और उनके कार्यों के लिये धनसंग्रह होना चाहिए। इस काम में पं० मालवीय, लाला जी, डा० मुंजे, मि० केलकर, श्रीनिवास आयंगर तथा मि० बिर्ला आदि को पूरा सहयोग देना चाहिये। प्रतिवर्ष हिन्दू जाति को स्वामी श्रद्धानन्द-दिवस मनाना चाहिए और उन के मिशन को पूरा करने का दृढ़ संकल्प करना चाहिये।

स्वामी श्रद्धानन्द जी 'ब्रह्मचर्य' के प्रचारक थे। स्त्री-शिक्षा और विधवा-विवाह के वह कट्टर पक्षपाती थे। हर एक हिन्दू का, जो स्वामी जी के भक्त होने का दावा भरता है, कर्तव्य है कि वह उक्त कार्यों का क्रियात्मक प्रचार करे। २५ करोड़ हिन्दुओं में से यदि २ लाख हिन्दु भी सच्चे हृदय और दृढ़ संकल्प के साथ स्वामी जी के कार्यों को पूरा करने का व्रत ले लें तो १० वर्षों में हिन्दू जाति की काया पलट हो जाय।

हिन्दूओं को याद रखना चाहिये कि श्री स्वामी जी को हिन्दू जाति के उत्थान के निमित्त जीवन की आहुति देनी पड़ी है। एक तरह से हिन्दू जाति की पतित अवस्था ही एक धर्मान्ध मुसलमान द्वारा स्वामी जी की हत्या का कारण है। इस लिए याद रखिये स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या की जिम्मेवारी उन सब हिन्दुओं पर है जो हिन्दू जाति की पतित अवस्था को देखते हुए भी उत्थान के लिए अपना कर्तव्य पालन नहीं करते। आइये, आज उस पाप को हम धो डालें और प्रायश्चित कर के श्री स्वामी जी द्वारा शुरु किए हुये कार्यों को द्विगुण उत्साह से करें ताकि शहीद श्रद्धानन्द का यश अमर हो और हिन्दू जाति फिर अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त कर सके।

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के

श्रीचरणों में "शोकाञ्जलि"

(१)

निज मातृभू के भक्त थे तुम दीन-जन के बन्धु थे ।
थे नाथ ! नाथ अनाथ के श्रद्धा-सुधा के सिन्धु थे ॥
कुलभूमि के कुलदेव थे, देवत्व की वर पूर्ति थे ।
मृत-जाति-जीवन-स्फूर्ति थे, करुणा क्षमा की मूर्ति थे ॥

(२)

आलोक थे इस लोक के, तुम आर्य जनता-प्रान थे ।
परतन्त्र भारत के सदा ही, मूर्तिमय अभिमान थे ॥
निज धर्म-धन के थे धनी, धृति सिन्धु के शुभ पोत थे ।
अशरन-शरन थे पुण्य-पावन, प्रेम-गङ्गा-स्रोत थे ॥

(३)

इस आर्त हिन्दू जाति के, तुम एक ही आधार थे ।
रणधीर थे, नरवीर थे, वर-आत्म-बल-आगार थे ॥
आपत्ति से हो भीत, देश-द्रोह तुम करते न थे ।
कर्त्तव्य-पालन में कभी, हा ! मृत्यु से डरते न थे ॥

(४)

हे वीर ! तुम तो वीर गति को पा चले इस लोक से ।
क्यों रो रही है आज हिन्दू-जाति फिर इस शोक से ॥
बलिदान की विधि धर्म पर, इस मृत्यु ने सिखला दिया ।
होते अमर मर करके कैसे, दृश्य यह दिखला दिया ॥

(५)

हे देव ! तुमने गोलियों को इस हृदय पर सह लिया ।
हो मूक केवल ईश से मृत जाति का हित कह लिया ॥
हे वीर ! जाओ शान्ति से, इस लोक से जो जा रहे ।
पर देखना इस पुण्य-पथ पर, वीर कितने आ रहे ॥

साहित्याचार्य गयाप्रसाद शास्त्री 'श्रीहरि'

गुरुकुल का महत्त्व

(हिज़ हाइनेस श्रीमान् राजाधिराज सर नाहरसिंह जी बहादुर के०सी०आई० ई० शाहपुरा)

शिक्षा का महत्त्व केवल विद्वत्ता में नहीं प्रत्युत सदाचार में है। एक बड़ा भारी विद्वान्, प्रत्येक दार्शनिक विषय को भली प्रकार समझाने की योग्यता रखने वाला यदि अपने आचार द्वारा प्रभाव नहीं डाल सकता तो उसकी समस्त विद्वत्ता लोगों के लिए व्यर्थ और उसके लिये भार स्वरूप है। इस के विरुद्ध एक साधारण विद्वान् जो अपने आचार द्वारा यह दिखला सकता है कि श्रेय और हेय मार्ग क्या है, संसार का बड़ा उपकार कर सकता है। अतएव शिक्षा पूर्ण तभी है जब कि विद्वत्ता के साथ २ चरित्र-संगठन का भी बल हो। वही शिक्षा-संस्था वस्तुतः लोकोपयोगी संस्था है जहां इस प्रकार का प्रबन्ध हो।

प्रसन्नता है कि गुरुकुल इस प्रकार की संस्थाओं में से एक है जहां विद्यार्थियों को ब्रह्मचर्य-जीवन व्यतीत करते हुये विद्या की प्राप्ति कराई जाती है। वृक्ष की उपयोगिता अथवा अनुपयोगिता उसके फल द्वारा निश्चय की जाती है। गुरुकुल से निकले हुये स्नातकों में से कइयों ने यह दिखला दिया है कि उन की शिक्षादात्री संस्था सचमुच देश के एक आवश्यक अङ्ग की पूर्ति कर रही है।

यह ठीक है कि बहुत से लोग इस से निराश होगये हैं, परन्तु इस का कारण है। वह यह है कि कार्य आरम्भ करते ही लोग बड़े २ फल की इच्छा करने लग जाते हैं, उन लोगों ने आशा की थी कि गुरुकुल से कणाद और गौतम निकलेंगे, परन्तु यह नहीं ध्यान दिया कि इतने दिनों की बिगड़ी हुई परिपाटी एक दम कैसे सुधर सकती है। आखिर वे बालक जो गुरुकुल में प्रविष्ट हुवे हैं, उन लोगों के ही सन्तान हैं जिन्होंने नियम पूर्वक गृहस्थाश्रम में प्रवेश नहीं किया है, और उन के पढ़ाने वाले किसी गुरुकुल के नहीं, प्रत्युत कालेज के निकले हुये हैं और आधुनिक शिक्षा प्रणाली के वातावरण से बाहर नहीं हैं। धैर्य पूर्वक स्वामी जी के बतलाए हुये मार्ग का अनुकरण करते चले जायें, तो आशा है अवश्य सफलता प्राप्त होगी, और किसी न किसी समय वह दिन भी देखने में आजायगा जिसकी सब को प्रतीक्षा है। ईश्वर वह दिन लावे।

संस्कृत सस्कृति संस्कार और गुरुकुल

(ले० श्रीयुत राज्यरत्न आत्माराम जी बड़ौदा)

२२ कोटि हिन्दु प्रजा धर्म की उपासक है। मुट्ठीभर उसके सच्चे वीर नेता कांग्रेस आदि द्वारा उसको स्वराज्य दिलाने की चिन्ता में है। पर इस प्रजा का यथार्थ स्वरूप वह अभी नहीं समझ सके। वह सच्चे हैं, उनका अनुभव भी ठीक है। उन्हों ने आंखों से युरोप आदि में जाकर देख लिया है कि मज़हबी दीवानगी इस समय वहां नहीं, और जबतक वहाँ की प्रजा मज़हब की एकमात्र पुजारी बनी रही तब तक वह इस वैभव को प्राप्त नहीं कर सकी। महात्मा गांधी जी ने भी जब चरखे से स्वराज्य दिलाने की प्रतिज्ञा करते हुए हजारों हिन्दु युवकों को कारागार भिजवाया, तब भी वह सच्चे रहे, कारण कि वह कहते थे कि भारत के सब मनुष्य चर्खा नहीं कात सके इस लिये मैं स्वराज्य कैसे दिलाता ? अङ्गरेज़ी शिक्षण जो कुछ भी फैला है, उसका कुछ भी प्रभाव कालेजों के पढ़े हुए युवक हिन्दु जाति के सुधारने में नहीं दिखा सके। ब्रह्मसमाज का दृष्टान्त काफ़ी है। हिन्दुओंका समाज दौर्भाग्य-वश 'धर्म' शब्द के गिर्द ही चक्कर काट रहा है। महमूद गज़नवी की तलवार और वर्तमान काल की मुसलिम-गुंडेशाही ने इस के मन्दिर तोड़े, पर यह उनकी मुरम्मत करने की चिन्ता में है न कि मूर्तिपूजा छोड़ने की। एक वर्ष में एक सहस्र बालविधवाओं को मुसलमान गुंडे घरों, मेलों, तीर्थों, रेलों, यज्ञों, मन्दिरों, नदियों, तथा सड़कों पर से उड़ा ले जाते हैं। पर यह बाइस करोड़ हिन्दुजाति क्या बालविधवा-विवाह की घोषणा करने को तैय्यार है ? गङ्गा-स्नान से मुक्ति दिलाने वाले हमारे धर्मनेता ब्राह्मण क्या ७ करोड़ दलित और दो करोड़ भीलों को कल गंगा-स्नान से शुद्ध कर सकते हैं। देहली के 'तेज' पत्र के कृष्णांक में श्रीयुत रामप्रसाद जी बी. ए. भूतपूर्व संपादक 'बन्देमातरम्' ने सच लिखा है कि हिन्दुवीर राजनीति का दुरुपयोग करने के कारण हारते रहे। श्री सातवलेकर जी ने उसी पत्र में सत्य कहा है कि वैज्ञानिक शस्त्रों से शून्य होने के कारण हिन्दुवीर अनेक बार परास्त हुए। महाराजा रणजीतसिंह जी ने कवायद सिखाने के लिये फ्रैंच नायक रखा था, पर यदि वीर सिख सेनापति युरोप भेजे जाते तो कितना उत्तम होता ? पर विदेश-गमन पाप है, यह हिन्दुधर्म कह रहा था। इस लिये जो महानुभाव देशभक्त हिन्दुनेता होने पर २२ कोटि हिन्दुप्रजा को धर्म की बातों से एकदम हटा कर स्वराज्य की अलफ़ बे पढाना चाहते हैं, वे सच्चे

देशभक्त हैं, इस में संदेह नहीं। यह डाक्टर हितैषी है, यह तो ठीक हैं, पर मरीज़ की मरज़ दूसरी है। जब तक घोड़े पर बैठ कर एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में रोटी खाने को हिन्दुप्रजा तैय्यार नहीं, जब तक वह यवन वा गोरे के पानी को रणभूमि में पीने को तैय्यार नहीं, तब तक उसको स्वराज्य का पात्र समझना ठीक नहीं हो सकता। अभी दिल्ली बहुत दूर है, यह कहावत ठीक घटती है।

अब प्रश्न केवल यह रह गया कि इन २२ कोटि हिन्दुओं का सामाजिक सुधार करने के लिये पहिले क्या किया जावे ? क्यों कि जब तक ये कल्पित धर्म के भूत से डर रहे हैं तब तक आत्म-हत्या और समाज-हत्या के कुमार्ग में विवश जा रहे हैं।

इनका सामाजिक रोग भी तो बड़ा भयंकर और असाध्य कोटि का बन रहा है। जो धर्म के रक्षक कहलाते हैं, वही इस समय दुर्दैव से हिन्दुसमाज के प्राणघातक बन रहे हैं। संस्कृत भाषा के एकमात्र वे ठेकेदार हैं। २२ कोटि हिन्दुप्रजा उनकी बात को ईश्वर-वाक्य मान रही है। वे यदि कहदें कि विधवा विवाह पाप है तो क्या मज़ाल कोई सेठ इसको कर तो जावे ? इस लिये वेदों वा अन्य संस्कृत ग्रन्थों में क्या लिखा है ? और उसके अर्थ व्याकरण अनुसार क्या है ? ये बातें जब तक घर घर में न पहुंचाई जावें तब तक २२ कोटि प्रजा नहीं मान सकती कि सत्य धर्म क्या है ? कानपुर से 'धर्म' नामी एक मासिकपत्र ६ वर्ष से निकलता है। वह एक सौ पण्डितों वा शास्त्रियों की नामावलि छाप कर भोले हिन्दुओं को कहता रहता है कि एक ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने यदि भूल की तो क्या हुआ, सैंकड़ों पंडित विधवा-विवाह के विरोधी हैं। इस का यथार्थ उत्तर गुरुकुल के हो जाने पर हम छाती ठोक दे सकते हैं कि यदि आप १०० संस्कृतज्ञ पंडितों के नाम विरोध में दे सकते हो तो हम गुरुकुल से निकले हुए स्नातकों के नाम, जो भारी पंडित है, उन से दुगुने वा तिगुने दे सकते हैं। विदेश-गमन पाप है, शुद्धि पाप हैं, दलितोद्धार पाप है, रण में जाना पाप है, ये सब पाप शीघ्र ही पुण्य हो जावें यदि शीघ्र ही हम गुरुकुलों की संख्या बढ़ा सकें।

संस्कृत-भाषा, संस्कृत-विद्या, वैदिक-संस्कृति और संस्कार, सब लुप्त हो चुके थे। काशी में ब्राह्मण के पुत्र को ही केवल संस्कृत और शास्त्र पढ़ाते थे। क्षत्रियों और वैश्यों के बालक कभी नहीं पढ़ पाते थे। आज गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार का भारी प्रताप है कि यदि कोई ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र वा दलित बालक संस्कृत तथा वेद पढ़ना चाहे, उसके लिए कोई रुकावट

का बंधन नहीं। इस समय उक्त गुरुकुल में चारों वर्णों के ही बालक जहां वेद पढ़ रहे हैं वहां यज्ञ भी करते हैं। यही नहीं परन्तु एक पंक्ति में भोजन भी करतेहैं। यह वह उत्तम काम है जिस की स्तुति हो नहीं सकती। संगठन का यही महाप्राण है।

सत्य सनातन वैदिक सिद्धान्तों, महती आर्ष संस्कृति, मनुष्य को देवता वीर तथा तपस्वी बनाने वाले वैदिक षोडश-संस्कार, इनके तत्त्व को वही छात्र जान सकता है जो गुरुकुल में रह कर संस्कृत का भारी पण्डित होकर निकले। दण्ड तथा कौपीनधारी होने से प्रत्येक ब्रह्मचारी बालचर बन जाता है। आर्य-भोजन अथवा अन्नाशन की महिमा गुरुकुल खूब दिखा रहा हैं। राममूर्त्ति समान पत्थर तोड़ते हुए, और पृथिवीराज समान बाण चलाते हुए अन्नाशी ब्रह्मचारी वीरपद को सार्थक कर रहे हैं। गुरुकुल कांगड़ी के छात्रों का डंडों से शेर की मार डालना, उनके ब्रह्मचर्य्य वीरता तथा अन्नाशन का भारी प्रकाशक है। गुरुकुल कांगड़ी के जन्म तथा जीवन को मैं सफल समझता हूँ, क्योंकि यह छात्रों की शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति को साथ साथ करने में रातदिन लगा हुआ है।

इस समय देशभक्त ला० हरदयाल जी संस्कृत भाषा सीखने की जरूरत आर्य्य-जाति के प्रत्येक छात्र को बता रहे हैं। कलकत्ते में जो अभी भारतीय संस्कृत-प्रचारक मंडल का अधिवेशन हुआ है, उसने आर्य्य-जनता का विशेष ध्यान संस्कृत भाषा सीखने की तरफ आकृष्ट किया है। जिस संस्कृत-भाषा की तरफ इस समय आर्य जनता का ध्यान खैंचा जा रहा है, उस संस्कृत-भाषा के प्रचार का भारी काम गुरुकुल कर रहा है और करता रहेगा। महर्षि दयानन्द का जीवन व्यवहाररूप से संस्कृत भाषा सीखने तथा सिखाने का सच्चा मार्ग-दर्शक है। लौकिक और वैदिक संस्कृत का भेद जना कर अंग तथा उपाङ्ग ग्रन्थों सहित वेद तथा वैदिक साहित्य को पढ़ने की ऋषि ने अनुभव-सिद्ध चेतावनी दी है। उनके इस मार्ग पर मुनिवर त्यागवीर महात्मा पंडित गुरुदत्त एम० ए० ने चलकर दिखा दिया। उस मुनि ने अष्टाध्यायी महा-भाष्य निरुक्त आदि अंग और छः दर्शन वा उपाङ्ग ग्रन्थ स्वयं पढ़े और गृह पर अष्टाध्यायी, महाभाष्य तथा निरुक्त आदि पढ़ाने के लिए दो श्रेणियां खोलदीं। और तीन वर्ष तक वा मरण-पर्य्यन्त उनको चलाते रहे। जब साधु केशवानन्द ने सनातन धर्म सभा लाहौर की तरफ से धारा-प्रवाह संस्कृत में भाषण दिए तो उस समय दो घंटे तक धारा प्रवाह शुद्ध संस्कृत बोल कर

वैदिक सिद्धान्तों का मंडन करते हुए पंडित गुरुदत्त ने सिद्ध कर दिया कि ऋषि दयानन्द प्रदर्शित सनातन आर्षविधि अङ्ग उपाङ्ग सहित वेद पढ़ने की सफल हो गई। पं० गुरुदत्त के इस सिद्ध प्रयोग ने गुरुकुल कांगड़ी को स्थापन करने की व्यवहार रूप से प्रेरणा की।

ज्यों २ गुरुकुल से स्नातक वा वैदिक पंडित अधिक से अधिक संख्या में निकलेंगे, त्यों २ ही वेद-मंत्रों के सच्चे अर्थ जिन्हें आज तक पौराणिक छिपा रहे थे सब पर खुल जावेंगे और विधवा विवाह तथा नियोग को रोकने की शक्ति फिर किसी में न होगी। विदेश-यात्रा, शुद्धि, दलितोद्धार, स्त्री-शिक्षण, सहभोज, तथा संस्कार आदि सामाजिक विषय, जो इस समय गोरखधंधे के रूप में दृष्टि पड़ते हैं, सरल हो जावेंगे। यूनिर्वसिटी ने परीक्षा को रोग बना कर उस की चिन्ता से जो सैकड़ों युवकों के मन मार दिये हैं, उसका भी संशोधन गुरुकुल की न्याय तथा प्रेम युक्त परीक्षा-प्रणाली कर रही है। मुसलमानों ने जो भ्रम फैला रखा है कि मांस खाने से ही बल आता है, इसका उत्तर गुरुकुलों ने उत्तम रूप से दे रखा है। पत्थर उठाने तीर चलाने तथा लाठी आदि की खेलें करते हुए कांगड़ी ब्रह्मचारियों ने कांगड़ी के जंगल में कुछ वर्ष हुए एक शेर को डंडों से मार कर दिखा दिया कि मांस खाए बिना भी सब वीर हो सकते हैं।

योरुप के शिक्षण-शास्त्री कहते हैं कि आदर्श-छात्र वह हो सकता है जो शरीर से पुष्ट, विद्या से विभूषित और चारित्रवान् हो, तथा समाज-सेवक बन सके। यह आदर्श गुरुकुल विशेष उत्तमता तथा सुविधा से पूर्ण कर रहा है, क्यों कि इसको यूनिवर्सिटी की परीक्षाओं के लिए घोटा लगवाने की जरूरत नहीं।

देश सेवा के जो अन्य भारी तत्त्व हैं, उनकी तरफ भी गुरुकुल कांगड़ी का पूरा ध्यान सदैव रहता है। यथा, यहां शिक्षण का माध्यम हिन्दी भाषा है। इस के अतिरिक्त यहां सब वर्णों के बालक, ब्राह्मण से लेकर शूद्रकुलोत्पन्न तक न केवल संग ही रहते हैं किन्तु एक ही पंक्ति में खाना खाते हैं। अछूत बालक भी बराबर इस में लिये जाते और समान अधिकार पाते हैं। इस लिए उक्त सब कारणों से मैं इस गुरुकुल का जन्म तथा जीवन सफल समझता हूं। जब तक नगर नगर में ऐसे २ उत्तम गुरुकुल नहीं होंगे तब तक आर्यजाति की संतान की शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति एक साथ नहीं हो सकेगी।

गुरुकुल कांगड़ी भूमि के प्रदाता दानवीर मुन्शी अमन सिंह जी

गुरुकुल कांगडी के उपाध्यायगण

Punjab Fine Art Press Bowbazar Calcutta

श्री पूज्य स्वामी जी के चरणों में

श्रद्धाञ्जलि

ऐ पूज्य मेरे स्वामी, क्या भेंट मैं चढ़ाऊं ।
भगवन् ! तुम्हीं बतादो, कैसे तुम्हें रिझाऊं ॥
उपकार जो किये थे, मुझ से गिने न जाते ।
ऋण से दबा हूँ उन के, कैसे उऋण कहाऊं ॥
जो कुछ भी मैं बना हूं, सब आप की कृपा थी ।
बदला मैं उस दया का, कैसे कहो चुकाऊं ॥
मङ्गल भरा तुम्हारा, नित हाथ शीश रहता ।
आशीष थी तुम्हारी, अब कैसे उस को पाऊं ॥
दलितों के तुम सहारे, तुम ने पतित उभारे ।
उस कार्य को तुम्हारे, पा शक्ति मैं बढ़ाऊं ॥
त्यागी परोपकारी, तुम दिव्य-देहधारी ।
मन में सदा तुम्हारी, प्रतिमा गुरो ! बिठाऊं ॥
वो दिव्य बल तुम्हारा, दिल साफ जोश वाला ।
पाऊं कि जिस से मैं भी, औरों के काम आऊं ॥
दुःख को मिटा चुके हो, अमरत्व पा चुके हो ।
क्यों देव सद्गति की, फिर प्रार्थना कराऊं ॥
श्रद्धा का दिव्य मन्दिर, यह मेरा दिल विमल हो ।
चल के तुम्हारे पथ में, जीवन सफल बनाऊं ॥
बस कामना यही अब, सेवा में सब लगाऊं ।
फिर अन्त में तुम्हारी, सी वीर मृत्यु पाऊं ॥

—धर्मदेव विद्यावाचस्पति

ब्रह्मचर्य्य

(ले० प्रो० धर्मदत्त जी विद्यालंकार, उपाध्याय आयुर्वेद महाविद्यालय)

विषय-वासना के संयम करने का नाम ब्रह्मचर्य्य है। विषय का संस्कार बीजरूप से प्रत्येक बालक के मन में विद्यमान रहता है। उसके युवावस्था में आने पर कुछ २ अंकुरित होने लगता है और पूर्ण युवा हो जाने पर अधिक विकसित हो जाता है। इस प्रकार विषय-वासना प्रत्येक मनुष्य के अन्दर स्वभावतः ही उत्पन्न होती है। पर इस के आधीन हो जाना ब्रह्मचर्य का नाश और इसे अपने आधीन रखना ही ब्रह्मचर्य्य है।

जब बालक के शरीर में शुक्र उत्पन्न होने लगता है तब उस का स्वभाव भी बदलने लगता है। पहले वह माता पिता की आँख के नीचे रहना पसन्द करता था, अब स्वतन्त्र और उच्छृङ्खल रहना पसन्द करता है। अब उसे किसी की आधीनता और और किसी का आश्रय अखरता है; जिन माता पिता के बिना वह थोड़ी देर में व्याकुल हो जाता था वे ही यदि उसे आधीनता की बेड़ियों में रखना चाहें तो उन के विरुद्ध द्रोह करने लगता है। स्कूलों के मास्टर बालक के इस स्वभाव-परिवर्त्तन को न समझ कर उन्हें बलात्कार जकड़ कर रखना चाहते हैं, जिस से बालक उनके विरुद्ध विद्रोह कर देते हैं और उन के तथा विद्यार्थियों के बीच झगड़े उत्पन्न हो जाते हैं। अध्यापकों को जानना चाहिये कि यह स्वतन्त्रता की प्रवृति युवावस्था प्रारम्भ होने का एक ज़रूरी परिणाम है। गुरुओं को चाहिये कि वे इस आयु में बालक की नियन्त्रण-रज्जु को न तो बहुत ढीला करें और न ही बहुत खींच कर रखें, क्योंकि दोनों ही अवस्थाओं में बालक के बिगड़ने का डर है।

बालक के अन्दर अब साहस भी आने लगता है। जो पहले रात को बाहर नहीं निकल सकता था, वह अन्धेरे में निकल कर बड़े २ उपद्रव करने लगता है; प्रायः कर बालक शैतानी के कामों में इस साहस को प्रकट करते हैं, यह साहस भी युवावस्था का एक परिणाम है।

परन्तु एक विशेष परिवर्तन और भी होता है। जो बालक अब तक विषय की बात नहीं जानता था वह अब विषय की बातों में दिलचस्पी लेने लगता है। जननेन्द्रिय के लिए एक प्रकार की उत्सुकता अनुभव करने लगता है और सुन्दर बालकों तथा सुन्दर कन्याओं की ओर आकर्षण भी अनुभव करने लगता है।

बारहवें वर्ष से सोलहवें वर्ष के बीच किसी समयमें यह विषय सम्बन्धी

विचार प्रत्येक बालक में उत्पन्न होने आरम्भ होते हैं। इन विचारों के झोंके उसे डगमगाने लगते हैं। परन्तु यदि माता पिता और आचार्य्य की तीव्र आँखे बालक पर हर समय लगी रहें और यदि इन के अमृतमय उपदेश उसे प्राप्त होते रहें तो बालक इन झोंकों द्वारा गिरने से बच जाता है। पर यदि दौर्भाग्य से माता पिता अपने काम धन्धों में लगे रह कर और आचार्य्य दूसरे प्रबन्ध के काम में लगे रह कर ऐसे संकटमय काल में बालक को अकेला छोड़ दें तो वह इन झोंकों से डगमगाया हुआ ऐसे अन्धेरे कुएं में जा गिरता है जिस में से फिर उसे उबारना कष्ट-साध्य हो जाता है। अभिप्राय यह है कि बारहवें से सोलहवें वर्ष के बीच जब कि अण्ड-ग्रन्थियां शुक्र को बनाना आरम्भ करने लगती हैं, और युवावस्था आरम्भ होने लगती है तब बालक पुरुष बनना आरम्भ होता है। इस अवस्था में स्वाभाविक तौर से उस के अन्दर कुछ विषय सम्बन्धी विचार उत्पन्न होने लगते हैं।

शुक्रोत्पत्ति का प्रयोजन

युवावस्था में—यह ठीक है कि शुक्रोत्पति के साथ विषय सम्बन्धी विचार भी आरम्भ होते लगते हैं, परन्तु शुक्रोत्पत्ति का एक मात्र प्रयोजन बालक की मानसिक तथा शारीरिक अभिवृद्धि करने का होता है। यदि इस आयु में शुक्र उत्पन्न न हो तो बालक सदा के लिए बालक ही रह जाय और पुरुष न बन सके।

शुक्र उत्पन्न हो कर फिर से शरीर में विलीन हो जाता और शरीर की मांसपेशियों नसों और अस्थियों के निर्माण में सहायक होता है, अतः इसे "जीवनीय रस" कहते हैं। यदि यह जीवनीय रस शरीर में उत्पन्न न हो तो कितना ही पौष्टिक भोजन खाया जावे तब भी शरीर और मस्तिष्क की वृद्धि न हो। परीक्षण से देखा गया है कि यदि किसी प्राणी के युवाकाल के आरम्भ में ही उसकी अण्ड-ग्रन्थियां निकाल दी जावें तो उसके शरीर और मन की वृद्धि सर्वथा रुक जाती है और वह बालक के समान ही रह जाता है। पर यदि फिर उसकी किसी जगह की त्वचा को काट कर त्वचा के नीचे किसी दूसरे प्राणी की अण्ड-ग्रन्थियाँ स्थापित कर दी जावें और ऊपर से त्वचा सी दी जावे तो उस की रुकी हुई शारीरिक और मानसिक वृद्धि फिर से आरम्भ हो जाती है, जिस से पता लगता है कि अण्ड-ग्रन्थियों का रस या शुक्र शरीर और मस्तिष्क की अभिवृद्धि का अत्यावश्यक कारण है।

शरीर और मस्तिष्क की अभिवृद्धि बारहवें से बीसवें वर्ष तक विशेष तौर से होती हैं। बीसवें वर्ष के पीछे

अभिवृद्धि की मात्रा कुछ मन्द हो जाती है, किन्तु चौबीसवें या पच्चीसवें वर्ष तक जारी रहती है। अतः २४ या २५ वर्ष की आयु तक शुक्र का एक मात्र प्रयोजन शरीर और मस्तिष्क की अभिवृद्धि करना ही है। इस अभिवृद्धि-काल में विषय सम्बन्धी विचार और चेष्टाएं उत्पन्न होने लगती हैं। परन्तु जो युवक उनको अपना परम शत्रु समझ कर उनको दबाये रखता है वह जहां अपने शरीर और मस्तिष्क की उन्नति में रुकावट नहीं आने देता वहां अपनी इच्छा-शक्ति को भी प्रबल बनाता और इस प्रकार अपने आप को पूर्ण मनुष्य बनाता है।

परन्तु जो युवक पच्चीस वर्ष की उमर से पहिले इस अभिवृद्धि-काल में विषय सम्बन्धी विचारों और चेष्टाओं में अपने जीवनीय रस को व्यय करना आरम्भ कर देता है, वह याद रखे कि वह अपने शरीर और मस्तिष्क के खर्च पर यह काम कर रहा है। यदि कोई युवक विषय सम्बन्धी विचारों और चेष्टाओं में आनन्द अनुभव करता है, वह अपना ही खून चूस कर समझता है कि मैंने अपना पेट भर लिया, अपने ही घर की अमूल्य सामग्री को जला कर समझता है मैंने तमाशा देख लिया।

अण्डग्रन्थियों को शरीर में से निकालने अथवा उन के रस को शरीर में से निकालने का परिणाम एक ही होता है। जिस प्रकार अण्डग्रन्थियों को निकालने से बालक मनुष्य नहीं बन सकता, उसी प्रकार चौबीस वर्ष से पहिले अण्डग्रन्थियों के रस के व्यय कर देने से भी बालक मनुष्य नहीं बन सकता; जो पुरुष शुक्र के बिन्दु २ को शरीर में लीन होने देता है वही सच्चा पुरुष बन सकता है।

युवावस्था के बाद—चौबीस या पच्चीसवें वर्ष के बाद शुक्र के दो कार्य हो जाते हैं:—

(१) शरीर का रक्षण (२) प्रजनन

इन में से रक्षण का कार्य मुख्य, और प्रजनन का कार्य गौण होता है। यह ठीक है कि यदि विषय सम्बन्धी चेष्टाओं में शुक्र का व्यय किया जाय तो शरीर को इतनी क्षति नहीं होती जितनी युवावस्था में, पर तो भी यदि अधिक व्यय किया जावे तो शरीर के रक्षण में न्यूनता अवश्य आ जाती है।

देखा गया है कि यदि पच्चीसवें वर्ष के बाद भी अण्डग्रन्थियों को निकाल दिया जाय तो पुरुष में पुरुषत्व के गुण नष्ट हो जाते हैं; वह भीरु और कमज़ोर हो जाता है, उस के अन्दर से उत्साह, साहस, वीरता, आत्माभिमान आदि पुरुषोचित गुण नष्ट हो जाते हैं; वह दूसरे के आक्रमण से अपनी रक्षा आप नहीं कर सकता और उसके अन्दर से विषय सम्बन्धी आनन्द तथा प्रजननशक्ति भी नष्ट हो जाती है, जिस से मालूम होता है कि शुक्र का

मुख्य प्रयोजन पुरुष के पुरुषत्व को कायम रखना है, अर्थात् पच्चीस वर्ष तक पुरुषत्व बनाना और पच्चीस के पीछे पुरुषत्व को कायम रखना शुक्र का मुख्य काम है । इस से जहां मनुष्य दूसरे पुरुषों के आक्रमण को रोक सकता है वहां उसी पुरुषत्व से नाना प्रकार की व्याधियों के आक्रमण को भी रोकने में समर्थ होता है । इसी लिये जब ऋतु-परिवर्तन होता है और रोगों का अधिक भय रहता है अथवा चारों तरफ कोई संक्रामक रोग फैला होता है तो जो पुरुष यत्न से वीर्य की रक्षा करते हैं वे रोग के आक्रमण से बच जाते हैं जब कि दूसरे लोग शीघ्र ही रोग का शिकार हो जाते हैं; इस से स्पष्ट है कि युवावस्था के पीछे भी शुक्र का मुख्य प्रयोजन आत्मसंरक्षण है और प्रजनन गौण है ।

शरीररूपी दीपक में शुक्र एक तैल है। यदि उसे उलट कर फैंक न दिया जावे तो वह शरीर में जला करता है। उसकी आग में सब रोगों के जीवाणु नष्ट हो जाते हैं, उस की ज्योति आंख और चेहरे पर दिखने लगती है, उस के तेज से चेहरा धधकता करता है, उसके ज्वलन से शरीर मे दिव्य शक्ति उत्पन्न होती है, जीवन में उत्साह और उमङ्ग की विद्युत् संचार किये रहती है, और यदि कोई आकस्मिक कारण न हो जावे तो जीवन रूपी दीप १०० वर्ष तक अखण्ड रूप से चमकता दमकता रहता है ।

शुक्र की उत्पत्ति के साथ विषय वासना की उत्पत्ति और स्थिति उस का लक्षण मात्र है, उद्देश्य नहीं । विषय वासना के होते हुए उसे आठों याम काबू रखना घर के सिंह को वश में रखने के सदृश है और यही सच्चा ब्रह्मचर्य है ।

माता पिता का कर्तव्य

कई बार माता दाई या दूसरे लोग बच्चे की उपस्थेन्द्रिय को हिला २ कर खुश हुआ करते हैं, परन्तु यह सर्वथा अनुचित है । जब बालक तीन या चार वर्ष का हो जावे तो उसे दाई या नौकरों के पास सर्वथा नहीं छोड़ना चाहिये; अनेक बालकों के चरित्रनाश का बीज इन्हीं नौकरों ने बोया है । जब बच्चा तीन वर्ष से बड़ा हो जावे तो उसे कभी किसी दूसरे के पास न सुलावें । अनेक मूर्ख माता पिता तो आठ या दस वर्ष के बालकों को भी एक ही चारपाई पर सुला देते हैं, इस से उनके चरित्र के नष्ट होने का भारी भय रहता है । जब बालक पांच वर्ष से बड़ा हो जावे तो उसे उठाना, प्यार करना और चूमना सर्वथा छोड़ देना चाहिये, इन बातों से उस में सोई हुई विषयवासना के उत्तेजित होने का भय रहता है ।

आठ वर्ष तक माता बालक की प्रत्येक क्रिया को अपने सामने रखे,

और आठ वर्ष की उमर के पीछे आने वाले भय को सम्मुख रखती हुई माता अपने बालक को सावधान करती हुई प्यार से समझावे कि "ए मेरे प्यारे बेटे! तेरी यह उपस्थेन्द्रिय बड़ी पवित्र इन्द्रिय है, यदि इसे हाथ से स्पर्श किया जावे या कोई दूसरा इसे हाथ से स्पर्श करे तो यह अपवित्र हो जाती है, जो बच्चे इसे छूते या दूसरों को छूने देते हैं वे बच्चे ही रह जाते हैं, मनुष्य नहीं बन सकते, अतः यदि तू मनुष्य बनना चाहता है तो मेरी शपथ खाकर कर कहो कि न तो कभी इस इन्द्रिय को छुवेगा और न किसी को छूने देगा।" बालक की श्रद्धा माता पर अगाध होने से माता की बात को मान लेगा। इस प्रकार की शिक्षा को आचार्यकुल में गुरुवर्ग भी समय २ पर देते रहें।

सात या आठ साल की उमर के पीछे बालकों को गुरुकुल में प्रविष्ट कर दें। गुरुकुलों की श्रेणियों के अध्यापकों या शिक्षकों को भी यह समझना चाहिये कि पुस्तक पढ़ाने की अपेक्षा बालक के चरित्र पर ध्यान देना उन के लिए अधिक आवश्यक है। वे याद रखें कि यदि उनके आधीन एक भी बालक में दुर्व्यसन आ जावेगा तो वे परमात्मा और दुनियाँ, दोनों के सामने इस लापरवाही के ज़िम्मेदार होंगे।

प्रायः आठ या दस वर्ष के बालकों को यह शंका उत्पन्न होती है कि "हम कहां से, कैसे उत्पन्न हुए?" माता पिता यदि उन के इस प्रश्न को टाल देंगे तो बालकों की इस प्रश्न सम्बन्धी उत्सुकता और भी अधिक बढ़ जावेगी, अतः 'उत्पत्ति' का अपने बालकों को ठीक २ ज्ञान करा देना चाहिये। उन को वनस्पतियों के फूल दिखा कर बताना चाहिये कि फल कैसे उत्पन्न होते हैं? पशुओं और पक्षियों की उत्पत्ति का भी इशारा कर देना चाहिये, क्योंकि यदि बालक अपने आप इन बातों की उत्सुकता में पड़ा रहेगा तो इस से अधिक हानि है।

यदि माता पिता तथा आचार्य चौबीस घंटे जागृत रह कर बालक के प्रति अपना कर्तव्य पूरा करेंगे तो निश्चय है कि बालक के मन-मन्दिर में सोया पड़ा विषयवासनारूपी सिंह शीघ्र जागृत न होगा। परन्तु इस आयु के बाद युवावस्था के आरम्भ होते ही यह मन से उत्पन्न होने वाला 'मनसिज सिंह' स्वयमेव कुछ २ जागृत होने लगता है। तेरह से बीस वर्ष तक की आयु न केवल बालक प्रत्युत उनके माता पिता और आचार्य, सब के लिये परीक्षा का काल है। यदि वे इस काल में से बालक को ऐसी सावधानी से ले जावेंगे कि जिस से उस में जागता हुआ यह सिंह उत्तेजित होने न पावे तो वे महाधन्य होंगे, परमात्मा के दरबार में आशीर्वाद के भागी होंगे। परन्तु यदि वे इस काल में बालकों के

प्रति लापरवाह रहेंगे तो वे याद रखें कि परमात्मा के दरबार में क्रोध और धिक्कार के पात्र होंगे।

यदि बालक किसी दूसरे लड़के से अधिक मिले या यारी दिखावे तो सावधान हो जाना चाहिये, इस उमर के लड़कों में यारी सदा चरित्र को भ्रष्ट करने के लिये होती है। माता पिता को घर में खेलने और मनोरञ्जन करने के लिये इतना सामान घर में रखना चाहिये कि बालक को इसके लिये बाहर न जाना पड़े। सायंकाल के समय माता पिता को कहीं बाहर न जाना चाहिए, घर पर रह कर बच्चों के मनोरञ्जन और खेल में उन्हें भी शामिल होना चाहिए। बालकों को खिलाने के साथ साथ मनोरञ्जन बार्तालाप से उनका ज्ञान भी अच्छा बनाया जा सकता है। यदि बालकों का पर्याप्त मनोरञ्जन हो जावे तो वे कभी दूसरे लड़कों के साथ खेलने बाहर न जावेंगे।

२० वर्ष की आयु तक लड़के को कभी नाटक, सिनेमा, नाच आदि देखने न भेजना चाहिये; गन्दा उपन्यास, अश्लील साहित्य और गन्दे चित्र तथा गन्दी गल्पें हाथ में न देनी चाहियें, क्योंकि ये विषयवासना सम्बन्धी विचारों को भड़काने वाले हैं।

यदि माता पिता और आचार्य के दिन रात सावधान रहने पर भी युवक में यह विषयवासना रूपी सिंह उत्तेजित हो जावे और वह किसी प्रकार का दुष्कृत्य कर बैठे तो उसको मारना या धमकाना नहीं चाहिये, इस से कुछ भी लाभ न होगा। उस को तो इस सिंह के विरुद्ध लड़ने और काबू करने के लिए उत्साहित करना चाहिये, पिता वा गुरु उसको एकान्त में बुला कर इस विषय में उत्तम २ उपदेश दे कर समझाने की पूर्ण चेष्टा करें। प्रेम से समझाने पर युवक अपनी कठिनता को आप ही कह देता है, तब पिता या आचार्य इस शत्रु के विरुद्ध लड़ने के लिए जिस प्रकार से भी बन सके उसकी सहायता करे।

युवकों का कर्तव्य

जो हस्तमैथुन के द्वारा शुक्र का नाश करते हैं, उनके शरीर और मस्तिष्क को बड़ा धक्का लगता है। उन के शरीर की वृद्धि रुक जाती है जिससे उनका चेहरा पीला, शरीर कृश, और शरीर के कृश हो जाने से पाचन आदि के अंग भी निर्बल हो जाते हैं, पाचन आदि के क्षीण होने से स्मरणशक्ति क्षीण हो जाती और बालक पढ़ाई में निर्बल हो जाते हैं। उत्साह, साहस, तेज और ओज की मात्रा घट जाती और वह डरपोक हो जाता है, आंखों से आँख मिला कर नहीं देख सकता। उसका सारा आत्मविश्वास नष्ट हो जाता है और इसलिए वह उद्योगहीन, परिश्रमहीन हो कर आलसी हो जाता है।

जननेन्द्रिय का दुरुपयोग करने से युवकों में स्वप्नमेह का रोग उत्पन्न हो जाता है जिस से निद्रावस्था में कोई विषय सम्बन्धी स्वप्न आता है, शिश्नहर्ष होता है, और शुक्रनाश हो जाता है। इस से शरीर और मस्तिष्क और भी अधिक निर्बल होने लगते हैं। कई युवक तो अधिक हस्तमैथुन करने से गृहस्थ में प्रवेश करने से पहिले ही अपने आप को नपुंसक बना लेते हैं; इस प्रकार वह स्मरण रखना चाहिये कि यह आदत मनुष्य के जीवन को सदा के लिए दुःखी बना देती है।

माता पिता और आचार्य को चाहिये कि ऐसे बालक को प्रेम से समझावें न कि डरावें और दण्ड दें; क्योंकि प्रायः युवक को यह पता नहीं होता कि इस आदत से उसके शरीर और मन की क्या हानि होती है। यदि इस से होने वाली हानियों को उसके सामने रखा जावे तो वह अवश्य ही इस आदत को छोड़ देता है।

यदि युवक यह समझता हो कि हस्तमैथुन आदि द्वारा शुक्रनाश करने में कोई आनन्द है तो उसे स्मरण रखना चाहिये कि यह आनन्द वही है जो कुत्ते को सूखी हड्डी चबाते समय हड्डी के द्वारा मुख में से निकले खून चूसने में आता है। उसे यह भी याद रखना चाहिये कि वह इस झूठे आनन्द से भविष्य में आने वाले आनन्द को खो रहा है। इस क्रिया को अपने शरीर और मस्तिष्क के लिए घातक समझ कर इस से मुक्त होने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिये, यदि मुक्त होने का दृढ़ निश्चय कर लेगा तो वह अवश्य ही मुक्त होगा। उसे अपने दिल में जमा लेना चाहिये कि यदि वह पच्चीस वर्ष से पहिले इन बातों से शुक्र का नाश करेगा तो पच्चीस वर्ष के बाद गृहस्थ के योग्य न होगा।

सब से प्रथम उसे व्यसनी युवकों के साथ मिलना छोड़ देना चाहिये और उन्हें अपना परम शत्रु समझना चाहिये। दृढ़ निश्चय कर लेने से भी यदि श्रवण, स्पर्शन, दर्शन आदि से कामविषयक विचार उत्पन्न होने लगें तो उसी समय शत्रु को समीप आया जान बैठा हो तो उठ खड़ा हो जाय, खड़ा हो तो दौड़ना आरम्भ कर दे; ऐसे समय में लेटे रहना या बैठे रहना उचित नहीं है; अथवा खुली हवा में आकर दो एक प्राणायाम कर लेने चाहियें। हर समय कार्य में लगे हुए युवक को विषय सम्बन्धी विचार अधिक नहीं तङ्ग करते, अतः अपना खाली समय खेती, फुलवारी, चित्रकारी या दस्तकारी में लगाये रखना चाहिये।

युवक को दूसरों से अलग एकान्त में भी नहीं रहना चाहिये। हंसी, खेल, सभा, सोसायटी और समाज आदि में सभ्य पुरुषों के साथ अच्छी तरह मिलना जुलना चाहिये। जो एकान्त में रहते हैं वे प्रायः इस दुर्व्यसन का

गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक तथा वर्तमान मुख्याधिष्ठाता और आचार्य जी

शिकार हो जाते हैं। यदि युवक से कभी विषय सम्बन्धी चेष्टा हो जावे तो पश्चात्ताप करना चाहिये; एक समय या एक दिन भोजन का परित्याग कर देना चाहिये; ऐसा करने से दूसरी बार फिर प्रलोभन आने पर वह अपने को अधिक बलवान पाता है।

वीर्य-रक्षा के कुछ साधन

(१) भोजन सम्बन्धी— मद्य, मांस, तैल, खटाई, लाल मिर्च, गर्म मसाले, चाय, काफी, तमाखू तथा सब तले हुए गरिष्ट भोजन, ये गर्म उत्तेजक और जननेन्द्रिय को भड़काने वाले भोजन हैं। इनका भोजन सभी को कम करना चाहिये और युवकों को तो सर्वथा न करना चाहिए। यदि भोजन अधिक मात्रा में खाया जावे तो भी रक्त का दबाव बढ़ जाता है, इस लिए वीर्य की रक्षा करना कठिन हो जाता है, अतः भोजन सदा थोड़ी मात्रा में करना चाहिये, रात्रि को तो विशेषतः इस का ध्यान रखना चाहिये।

(२) व्यायाम सम्बन्धी— निर्बल युवक और पुरुषों के लिए वीर्यरक्षा करना अपेक्षया कठिन होता है, क्योंकि शरीर की निर्बलता के साथ उत्पादक अंग भी निर्बल होते हैं और शरीर के बलवान होने के साथ उत्पादक अङ्ग भी बलवान होते हैं। उत्पादक अङ्गों की निर्बलता को हटाने के लिए सीधे खड़े होकर या पेट या पीठ के भार लेट कर टांगों को आगे या पीछे या पार्श्वों की ओर धीरे २ उठाने वाली व्यायाम करनी चाहिये। ज्यों २ जंघायें बलवान होती हैं त्यों २ उत्पादक अङ्ग भी बलवान होते हैं, अतः दौड़ना भी बड़ा लाभदायक है। इस के अतिरिक्त पीठ या रीढ़ की हड्डी की भी व्यायाम से वातनाड़ियां बलिष्ट होती हैं, इस से उत्पादक अङ्गों की वातनाड़ियां बलिष्ट होती हैं। ऐसे व्यायाम और आसन जिन में पीठ को आगे या पीछे की तरफ झुकाया जाता है प्रतिदिन कुछ काल करनी चाहिये। शीर्षासन से भी वीर्य-रक्षा में बड़ी सहायता मिलती है। यदि सायंकाल या सोने से ५ या १० मिनट पूर्व शीर्षासन किया जाये तो रात्रि को स्वप्नमेह या शिश्नहर्ष का भय नहीं रहता, क्योंकि इस से शुक्राशय और अन्य उत्पादक अङ्गों में रक्त का संचय कम हो जाता है।

(३) प्राणायाम सम्बन्धी— सिद्धासन में अर्थात् बांयें पैर की एड़ी को गुदा और उपस्थेन्द्रिय के मध्य-स्थान पर और दाहिने पैर की एड़ी को उपस्थेन्द्रिय पर ऐसा रखकर बैठे कि बांयें पैर की एड़ी से सीवन प्रदेश अच्छी तरह दबा रहे; इस स्थान के दबने से भी वीर्य रक्षा में बड़ी सहायता मिलती है। इसी प्रकार सीधा बैठकर एक नासिका से गहरा श्वास लेकर कुछ क्षण अन्दर रोक कर दूसरी नाक से कुछ धीरे २

बाहिर फैंके। अन्दर लेते समय पेट और छाती को फूलने दे, और श्वास फैंकते समय पेट और छाती को अन्दर सिकुड़ने दे। परन्तु सारे समय में उपस्थेन्द्रिय और गुदा को ऊपर खींच रखे।

(४) स्नान सम्बन्धी—एक टब में ताजा कूप का जल भर कर ऐसे बैठे कि टांगें तथा धड़ पानी से बाहिर रहें और जंघा से नाभि तक का प्रदेश पानी में डूबा रहे। फिर एक तौलिये से पेडू तथा शिश्न और गुदा के मध्यवर्ती प्रदेश को अच्छी तरह मलें, इस प्रकार पांच या दश मिनिट स्नान करना पर्याप्त है। इस से उत्पादक अंगों में नवीन बल प्राप्त होता है। शिश्न के अग्र चर्म के नीचे वर्तमान मल को भी साफ़ करते रहना चाहिये, क्योंकि उसके संचित होने से शिश्न के क्षोभ का भय रहता है।

(५) निद्रा सम्बन्धी—सोने से न्यून से न्यून दो घण्टा पहिले तक भोजन दूध या पानी आदि द्रव न पीने चाहियें, क्योंकि भरे हुए पेट और भरे हुए मूत्राशय का दबाव शुक्राशय पर पड़ सकता है जिस से स्वप्नमेह का भय रहता है। यदि तीव्र स्वप्नमेह की शिकायत हो तो रात्रि का भोजन कुछ दिन के लिए बन्द कर देना चाहिये। सोने से पहिले पेशाब होकर हाथ मुंह धोकर थोड़ी देर शान्ति से बिस्तर पर बैठना चाहिये; सारी चिन्ताओं को मन से हटा कर चित्त को खूब प्रसन्न करना चाहिये और अपने शरीर के सब अंगों पर हाथ फेरते हुए और विशेषतः निर्बल अंगों पर हाथ फ़ेरते हुए कल्पना करनी चाहिये कि ये सब अंग बलवान हो रहे हैं। कुछ काल के लिए चिन्ताओं से रहित आनन्द-मग्न हो अपनी रुचि के अनुसार भगवच्चिन्तन करना चाहिये और इसी निश्चिन्तता की स्थिति में लेटते ही सो जाना चाहिये। जिस प्रकार की अवस्था सोने से ठीक पहिले रहती है वैसी ही प्रायः सारी रात रहती है, अतः निश्चिन्त हो कर सोने वाले को अच्छी नींद आती है। स्वप्नमेह की चिन्ता सर्वथा न करनी चाहिये, जो जितनी अधिक चिन्ता करता है, यह भूत उसे उतना ही अधिक लिपटता है। सदा करवट पर ही सोना चाहिये, पीठ पर सोने से मूत्राशय और मलाशय के बीच में वर्तमान शुक्राशय पर दबाव पड़ता है जिससे कि स्वप्नमेह का भय रहता है।

रात्रि को एक या दो बजे के लगभग प्रायः प्रत्येक आदमी की निद्रा खुलती है, उस समय उठ कर एक वार अवश्य पेशाब कर लेना चाहिये; अधिक स्वप्नमेह की शिकायत हो तो जितनी वार नींद खुले उठ कर पेशाब कर लेना चाहिये। जिस समय शिश्न-हर्ष का पता लगे उस समय लेटे न रह कर उठ कर बैठ जाना या कुछ कदम चल लेना चाहिये।

(६) आचार-विचार सम्बन्धी - जिस प्रकार यदि आरम्भ में आँख को धूंयें और धूल आदि से न बचाया जावे या उस से अधिक उपयोग या दुरुपयोग लिया जावे तो आंख कमज़ोर पड़ जाती है और फिर थोड़े से धूंयें के लगने से लाल होकर पानी बहाने लगती है, फिर यदि कुछ काल आँख को पूरा आराम दिया जावे और उससे किसी प्रकार का उपयोग न लिया जावे तो आंख अपनी साधारण अवस्था में आ जाती है, इसी प्रकार यदि युवक अपनी उपस्थेन्द्रिय को दर्शन, स्पर्शन, श्रवण अथवा हस्त-मैथुन आदि से और गृहस्थ अतिस्त्रीसंग से क्षुब्ध करता रहे तो जनन सम्बन्धी अङ्ग इतने निर्बल हो जाते हैं कि थोड़े से भी क्षोभक कारण से क्षुब्ध हो जाते हैं, इसलिए पहिले तो ऐसे आचार विचार से बचना चाहिये जो जननेन्द्रिय को क्षुब्ध करने वाले हैं। यह समझ लेना चाहिये कि ये सब उत्तेजनाएं उत्पादक अंगों को अधिक २ निर्बल और असहन शील कर जाती हैं। गृहस्थियों और युवकों में उत्पादक अंगों को अधिक उत्तेजित करने से ही शीघ्रस्खलन और पुंस्त्व-नाश के रोग हो जाते हैं, अतः जनन सम्बन्धी अंगों को बलवान करने और इन्हें सब उत्तेजनाओं से बचाने के लिए पूर्ण विश्राम देना चाहिये। ब्रह्मचर्य से ही वास्तव में भोग की शक्ति और भोग का आनन्द प्राप्त होता है।

(७) औषधि सम्बन्धी— दिन में तीन या चार माषे आमलकी या हरीतकी का चूर्ण मधु के साथ खा लेने से वीर्य रक्षा में सहायता मिलती है। बबूल की भुनी हुई गोंद को वेसन के लड्डू आदि में डाल कर खा लेना इसके लिए हितकर है। अच्छा बना हुआ चन्दनासव एक या दो तोला थोड़े जल में मिला कर दिन में एक दो बार पी सकते हैं; ये सब उत्पादक अंगों के लिए शामक औषधियें हैं।

बंग, अभ्रक, प्रवालमुक्ता और शुक्ति आदि की भस्में तथा [illegible] के बने हुए प्रयोग भी वीर्य रक्षा में बड़े सहायक होते हैं। ये उत्पादक अंगों के लिए उत्तम बल्य द्रव्य हैं। उत्पादक अङ्गों को उत्तेजित करने वाली दवाइयां न खानी चाहियें क्यों वे थोड़ी देर के लिए उत्तेजित कर के उन्हें चिरकाल के लिए निर्बल कर जाती हैं।

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत्॥ अथर्व वेद

ब्रह्मचर्य-तप से ब्रह्मचारी मृत्यु या पाप का हनन करते हैं, और एवं जीवात्मा ब्रह्मचर्य के द्वारा इन्द्रियों से सुखानन्द को पाता है।

मन्त्र-साधन

(मन्दाक्रान्ता छन्द)

१

कैसा आया समय, बदला काल का रङ्ग कैसा
होती जाती भरतभुवि की आज कैसी दशा है।
आँखें खोलें विबुध, समझें देश की सर्व बातें
सोचें होके प्रयत, युग के धर्म का मर्म क्या है॥

२

आशा होवे उदय उर में, दूर होवे निराशा
सूझें सारे सुपथ, सफला युक्तियां हों हमारी।
ऐसे बाँधें नियम, जिससे कालिमा दूर होवे
आभा वाले सकल दृग हों, ज्योति फैले जनों में॥

३

प्यारी संख्या प्रति दिवस है जाति की न्यून होती
संतप्ता हो दुख-उदधि में मग्न जातीयता है।
छीने जाते हृदय-धन हैं, पत्नियां छूटती हैं
सोने जैसा सुख-सदन है प्रायशः दग्ध होता॥

४

ढाहे जाते सुर-सदन हैं, मूर्त्तियाँ टूटती हैं
बाधा होती अधिकतर है पर्व औ' उत्सवों में।
काँटे जाते प्रथित पथ में चाव से हैं बिछाये
न्यारी शोभा रहित, नित है नन्दनोद्यान होता॥

५

की जाती हैं विफल, छल से सिन्धुजा की कलायें
टूटी सी है परममधुरा भारती की सुवीणा।
क्रीड़ा द्वारा कलुषित बनी मञ्जु मन्दाकिनी है
लूटा जाता धनद-धन है, स्वर्ग है ध्वंस होता॥

६

तो भी होता कलह नित है, वैर है वृद्धि पाता·
सद्भावों के सुमन-चय में हैं घुसे दम्भ-कीट।
सच्चिन्ता की ललित-लतिका हो गई छिन्नमूला
उल्लासों के विपुल विटपी पुष्प ही हैं न लाते॥

७

धर्मों की है निपतित ध्वजा, सत्यता वञ्चिता है
हैं शास्त्रों की सबल विधियाँ रूढ़ियों से विपन्ना।
सत्कर्मों की प्रगति बदली लोक आडम्बरों से
मोहों द्वारा बहुमथित हो आर्यता मूर्च्छिता है॥

८

वेदों की है अतुल महिमा, मन्त्र हैं सिद्धि-मन्त्र
धाता जैसी सृजन-पटु हैं उक्तियाँ आगमों की।
भू-विख्याता, पतितजनता-पावनी जान्हवी है
आर्यों के हैं सुअन, हम में कौनसी न्यूनता है॥

९

सच्ची शिक्षा सतत चित की उच्चता है सिखाती
सद्वाञ्छा है विदित करती त्याग संकीर्णता दो।
उद्बोधों के विपुल मुख से है यही नाद होता
जागो जागो, कटि कस उठो, काल की क्रान्ति देखो॥

१०

जो लोहू है गरम, यदि है गात में शेष शक्ति
जो थोड़ी भी हृदय-तल में धर्म की वेदना है।
हो जाता है चित व्यथित जो जाति-उत्पीडनों से
तो हो जावो सजग, सम्हलो, सिद्धि का मन्त्र साधो॥

साहित्यरत्न श्री अयोध्या सिंह जी उपाध्याय

सहजात-प्रवृत्तियें और उन का शिक्षा में स्थान

(ले०--श्री पं० प्रियव्रत जी विद्यालङ्कार)

पशुओं और मनुष्य में बड़ा भेद यह समझा जाता है कि जहां पशुओं के सारे व्यवहार और उनकी सारी चेष्टायें सहजात-प्रवृत्तियों के आधीन होती हैं वहां मनुष्य अपने सारे कार्य बुद्धि से सिद्ध करता है। सहजात-प्रवृत्ति (Instinct) प्राणी के अन्दर कार्य करने की वह शक्ति है, जिस की सहायता से प्राणी फल या उद्देश्य का पहिले से ज्ञान न रहने और उद्देश्य प्राप्ति में उपरोक्त शारीरिक या मानसिक चेष्टाओं की पहले से शिक्षा न होने न पर भी अभीष्ट फल या उद्देश्य को प्राप्त कर लेता है। पशुजगत् अपने अधिकांश व्यवहारों को सहजात प्रवृत्तियों की सहायता से ही पूरा करता है। बिल्ली चूहे को देखते ही उस पर झपटती है; कुत्ते के सामने आते ही भाग खड़ी होती है या भागने का मौका न रहने पर लड़ने को तैयार हो जाती है है; पानी और आग से बहुत बचती है। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि बिल्ली की ये क्रियायें इस लिये नहीं होती कि उसे मौत, जीवन या आत्मरक्षा का कोई विचार ऐसा करने के लिए प्रेरित करता है; नहीं, इस प्रकार का कोई विचार बिल्ली के मन में नहीं होता। चूहे के सामने आने पर बिल्ली उस पर झपटने और कुत्ते के आने पर भागने के लिए स्वभाव से बाधित है। यह बात दूसरी है कि इस बाधित होने का प्रयोजन आत्म-रक्षा हो। बिल्ली के मन में आत्म-रक्षा जैसा कोई विचार उपस्थित नहीं होता। बिल्ली तो चूहे के आगे आने पर इस प्रकार क्रिया कर बैठती है, जिस प्रकार किसी चीज के पास आ जाने से आँख झपक जाती है। किसी बड़ी शक्ति के मन में बिल्ली की आत्म-रक्षा का विचार हो तो हो। बिल्ली के शरीर की रचना और उसकी नस नाड़ियों की बनावट ही इस प्रकार की है कि वह चूहे का चित्र आंखों के आगे आते ही झपट पड़े।

मुर्गी अण्डे पर उन्हें सेने लग जाती है। अण्डों से बच्चे निकल आने पर चुग्गा ला ला कर उनकी चञ्चु में डालने लग जाती है। मुर्गी की इन क्रियाओं का प्रयोजन बच्चों की उत्पत्ति और उन की रक्षा है। पर फिर भी मुर्गी को पहले से इस प्रयोजन का ज्ञान नहीं होता और नाही उसे उन तरीकों की पहिले से शिक्षा होती है, जिनका अवलम्बन करके अण्डे सेने पर उन में से बच्चे निकल आयें। अण्डे देने के दिन आने पर चिड़िया को घोंसला बनाने

की शिक्षा कौन देता है ? कोई नहीं, केवल सहजात-प्रवृत्ति (Instinct) से वह घोंसला बनाने लग जाती है। बिल्ली, मुर्गी और चिड़िया ही नहीं सारा पशु-पक्षी जगत् ही अपने व्यवहारों के लिए सहजात-प्रवृत्तियों पर निर्भर करता है।

इस बात से प्रायः सभी विचारक सहमत हैं कि पशु-पक्षियों का जीवन सहजात-प्रवृत्तियों पर ही अवलम्बित है। पर मनुष्यों के सम्बन्ध में इस से विपरीत विचार पाये जाते हैं। समझा जाता है कि मनुष्य सर्वथा बुद्धि-जीवी प्राणी है। उस में सहजात प्रवृत्तियों का बिल्कुल अभाव माना जाता है। पर ज़रा गहरा विचार करने पर इस विचार की अवास्तविकता स्पष्ट दीखने लग जाती है। मनुष्य भी उसी प्रकार सहजात-प्रवृत्तियों पर आश्रित है जिस प्रकार पशु और पक्षी। नवजात बालक माता के स्तनों का स्पर्श पाते ही उन्हें मुख में क्यों ले लेता और दूध चूसने के लिए मुख और हाथों से उन्हें क्यों दबाने लग जाता है? भूख मिटाने की इस विधि की शिक्षा उसने कहां पायी है ? छोटा बच्चा चमकीली वस्तुओं की ओर आकृष्ट क्यों होता है ? चमकीली वस्तुओं का आकर्षण बच्चों में इतना बलवान् होता है कि अनेक वार बच्चे साँपों को पकड़ने की चेष्टा करते पाये गये हैं। अगर उक्त अवसरों पर दूसरे लोग न पहुंच गये होते तो साँप उन नन्हें बच्चों का डस लेते। बच्चों का चमकीली वस्तुओं की ओर आकर्षण क्या सहजात-प्रवृत्ति वश नहीं होता ? नवजात और छोटे २ बच्चों में ही सहज-प्रवृत्तियें नहीं पाई जातीं, प्रस्तुत युवा और वृद्धों में भी इनका पूरा राज्य होता है। युवक युवती की ओर क्यों आकृष्ट होता है और उसे सारा संसार अपनी प्रेम-पात्री के रंग में रंगा हुआ क्यों नज़र आता है? सहजात-प्रवृत्ति से ही इस घटना की की व्याख्या हो सकती है। मनुष्यों में भी पशु-पक्षियों की तरह ही सहजात-प्रवृत्तियों का राज्य होने पर भी उन में कुछ ऐसी शक्तियें हैं जो उन के जीवन को पशु-पक्षियों के जीवन से भिन्न बना देनी हैं। मनुष्य की स्मृति शक्ति, उस को विचार करने और परिणाम निकालने की शक्ति उस के जीवन को अन्य प्राणियों के जीवन से भिन्न बना देती हैं। पशु-पक्षी किसी पदार्थ के सामने आने पर पुनः पुनः एक ही प्रकार की क्रिया करेंगे। पर मनुष्य की स्मृति आदि शक्तियें उस के और पशु-पक्षियों के जीवन में बड़ा भेद डाल देती हैं।

इस प्रकार हम देख चुके हैं कि पशु पक्षियों और मनुष्यों का जीवन समान रूप से सहजात-प्रवृत्तियों (Instinct) पर आश्रित है। अब देखना

यह है कि इन सहजात प्रवृत्तियों का मनुष्य की शिक्षा में क्या मूल्य है। इस प्रश्न पर विचार करने से पूर्व हमें सहजात-प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में दो नियमों को संक्षेप से समझ लेना चाहिये। मनोवैज्ञानिकों का कथन है। कि (१) सहजात-प्रवृत्तियें अभ्यास से दब जाती हैं, और (२) ये चिरस्थाई नहीं होती। (१) पहले नियम का अभिप्राय यह है कि प्रायः ऐसा होता है कि जब किसी श्रेणी विशेष के पदार्थों के सामने आने पर प्राणी में कोई सहजात-प्रवृत्ति उत्पन्न हो सकती हो तो जो पदार्थ उस प्रवृत्ति (Instinct) के उद्बोधन में प्रथम आता है उसी के सामने आने पर वह प्रवृत्ति बार २ उठती है, उस श्रेणी के दूसरे पदार्थों के सामने आने पर वह प्रवृत्ति नहीं उठती। युवक के मन में युवतियों को देख कर प्रेम उत्पन्न होता है। पर जो युवती उस के अन्दर प्रेम की प्रवृत्ति (Instinct) को जगाने में प्रथम कारण होगी, युवक उसी से प्रेम करने लग जायेगा। मित्रता आदि की प्रवृत्ति (Instinct) में भी यही नियम काम करता है। इसी नियम की दूसरी व्याख्या यह है कि अनेक पदार्थों को देख कर प्राणी के अन्दर दो विरोधी सहजात-प्रवृत्तियें (Instincts) उत्पन्न होती हैं। ऐसे पदार्थ को देखने पर जो प्रवृत्ति पहले उत्पन्न हो जायेगी भविष्य में वही प्रवृत्ति पुनः पुनः उत्पन्न होगी, दूसरी नहीं। छोटे बच्चे के अन्दर कुत्ते या और प्राणियों को देखने पर उन से प्यार करने की इच्छा भी उत्पन्न होती है और साथ ही उसे इन से डर भी लगता है। अगर किसी कारण से कुत्ते के प्रथम दर्शन में बच्चे के अन्दर डरकी प्रवृत्ति (Instinct) प्रबल हो जाये तो भविष्य में सालों तक उस के मन में कुत्तों से प्यार करने की इच्छा उत्पन्न नहीं होगी: इस नियम की पुष्टि में प्राणी-जगत् और मनुष्य-संसार से लाखों उदाहरण दिये जा सकते हैं। स्थानाभाव से एक दो उदाहरण ही पर्याप्त समझे गये हैं।

(२) दूसरे नियम का अर्थ यह है कि अनेक सहजात-प्रवृत्तियें एक निश्चित आयु पर ही उत्पन्न नहीं होतीं। यदि उस निश्चित आयु के अन्दर २ उद्बोधक पदार्थ आकर इन प्रवृत्तियों को जगादें तो भविष्य में भी वे पदार्थ उन्हें जगाते रहेंगे, यद्यपि उन के उत्पन्न होने की आयु बीत भी चुकी हो। परीक्षणों से देखा गया है। कि अगर मुर्गी के बच्चे जन्म से लेकर आठ दस दिन तक अपनी माता की आवाज़ न सुन पायें तो फिर उनके लिए माता की आवाज़ माता की आवाज़ नहीं रहेगी। इन नियमों के अनुसार चलने से सिंह और बकरी को वास्तविक अर्थों में एक घाट पानी पिलाया जा सकता है। इन नियमों के अपवाद भी पाये जाते हैं पर उन से नियमों

गुरुकुल सूपा के प्रारम्भिक ब्रह्मचारी, कार्यकर्त्ता तथा संस्थापक श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी ।

की पुष्टि ही होती है, खण्डन नहीं। इन नियमों को ध्यान में रखते हुए हम शिक्षा को इस प्रकार की बना सकते हैं जो कि विद्यार्थिओं के लिये अधिक से अधिक उपयोगी हो सके।

मनुष्यों की सहजात-प्रवृत्तियें भी उपर्युक्त दोनों नियमों से शासित होती हैं। बालकों को खेल-कूद, कथा कहानियों और चीजों की बाहिरी बातों में आनन्द आता है। युवकों को शारीरिक व्यायाम, काव्य, गान, मित्रता, प्रकृति, यात्रायें, साहस के कार्य विज्ञान और दर्शन अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। प्रौढ़ पुरुष के मन में महत्त्वाकांक्षा, नीति, अर्थ-संग्रह और दूसरों के प्रति उत्तर-दायित्व और स्वार्थ के भाव राज्य करने लगते हैं। अगर कोई बालक खेलने और कूदने के दिनों में क्रीड़ा की सामग्री और क्षेत्र से अलग रहे तो भविष्य में वह इन चीजों को कभी नहीं सीख सकेगा। यौवन के आरम्भिक काल को यदि संयम और सावधानी के साथ व्यतीत कर दिया जाये तो सारा भविष्य जीवन पवित्र और सदाचारी बन सकता है, दूसरी ओर उस समय की अत्यधिक स्वच्छन्दता भविष्य जीवन को नरक बना सकती है। अध्यापक का कार्य विद्यार्थियों में उत्पन्न होने वाली सहजात प्रवृत्तियों का निरीक्षण करना है। जब जिस विषय के लिए शौक पैदा हो, तभी विद्यार्थी के आगे उस के सीखने के सामान उपस्थित कर देने चाहियें नहीं तो समय बीत जाने पर वह फिर कभी उस विषय को नहीं सीख सकेगा। आलेख्य, प्रकृति-विज्ञान, वनस्पति-विज्ञान जैसे विषयों की ओर विद्यार्थियों की रुचि एक खास समय में पैदा होती है। यन्त्र-विज्ञान, भौतिकी और रसायन का समय इसके बाद आता है। फिर मनोविज्ञान, दर्शन और धर्म के तत्त्वों की ओर रुचि हो जाती है। इस के बाद सांसरिक काम-धन्दे ही मनुष्य के लिए सब कुछ हो जाते हैं। प्रत्येक विषय के लिए रुचि कुछ समय में ही शान्त हो जाती है, उस के पश्चात् हम उसी पर निर्भर रहते हैं जो कुछ हमने उन दिनों में सीख लिया था जिन दिनों में हमारी रुचि उस विषय में उत्कट रूप में बनी हुई थी। यही कारण है कि मनुष्यों का अपने पेशों से भिन्न विषयों का ज्ञान उस से अधिक नहीं होता जितना कि उसने २५ साल से पहिले उन के सम्बन्ध में प्राप्त कर लिया था। पीछे से विषयों के सीखने के लिए आवश्यक गुण, निःस्वार्थ और उत्सुकता, जाते रहते हैं। पिछली उमर में हम पहिले तो कुछ नया सीख नहीं पाते, अगर सीख भी लें तो वह विषय हमारे लिये उतना अपना नहीं बन पाता जितने कि उस समय सीखे हुए विषय बने होते हैं जब कि उन के सीखने का

स्वाभाविक समय था।

इस लिये अध्यापक का प्रथम कर्तव्य यह है कि वह देखता रहे कि विद्यार्थी में किस समय कौनसी प्रवृत्ति (Instinct) उत्पन्न होती है। साथ ही विद्यार्थियों का यह कर्तव्य है कि वे भविष्य पर किसी विषय को न छोड़ें। हरेक विषय को उस के उचित समय में ही सीख छोड़ें। खास खास आयु में ही खास २ विषयों की ओर रुचि बढ़ती है। वह समय गुजर जाने पर उन विषयों के लिए फिर वैसा उत्साह नहीं रहता।

---

* कुलभूमि *

गङ्ग की तरङ्ग-वारी, हिमगिरि सङ्ग वारी,
पुण्य-प्रेमरङ्ग वारी, विश्व अभिराम है।

सुजन समूह वारी, सुमन-सुरभि वारी,
सरस समीर वारी, सुखद निकाम है॥

ब्रह्मवाद-राग वारी, विषय-विराग वारी,
ब्रह्मचारि-वृन्द वारी, विबुध सुधाम है;

स्वर्ग अपवर्ग वारी, भुक्ति मुक्ति सर्ग वारी,
प्यारी "कुलभूमि" ही हमारी पूर्ण-काम है॥ १॥

श्री हरि

कुल की कहानी

सुनाने लगा एक हूं मैं कहानी,
जो औरों से अब तक सुनी थी जबानी,
नहीं इसमें शक है कि वो है पुरानी,
मगर साथ ही है रहस्यों की खानी ॥
ज़रा इसलिए ध्यान से इसको सुनिए।
औ' जो कोई उत्तम हो गुण उसको चुनिए ॥ १ ॥

हिमाचल की बगली में इक बन खड़ा था,
जो अज्ञात सदियों से अब तक पड़ा था,
वो झङ्खाड़ झाड़ी से गुम्फित पड़ा था,
जो कांटे कंटेरी से बिलकुल मढ़ा था ॥
कि चिंघाड़ चीते जहां मारते थे।
कि दर्रे पहाड़ों के जो फाड़ते थे ॥ २ ॥

पहलवां भी इक बार थे खौफ़ खाते,
वे जा जा के फिर बीच से लौट आते,
अन्धेरा था इतना कि दिल कांप जाते,
प्रखर भानु भी थे नहीं पार पाते ॥
वो झाड़ी ही झाड़ी भरी हर जगह थी,
खड़े होने तक को न तिल भर जगह थी ॥ ३ ॥

वो मस्ते मतङ्गों से खोदा पड़ा था,
या जङ्गल के भैंसों से रोन्धा पड़ा था।
वराहों की दाढ़ों से रोंधा पड़ा था,
औ' खूंखार पशुओं से अब तक भरा था।
यहां पर जहां आज है शामियाना।
था पड़ता दिवस में भी दीपक जलाना ॥ ४ ॥

सुना हमने सब कुछ मगर ये सुनाओ,
ये सारा हुआ कैसे ये तो बताओ,
असम्भव से सम्भव ये कैसे, सुझाओ,
औ' विश्वास जल्दी से हमको दिलाओ ॥
कि कोलं से हीरे का ये मूल कैसे ।
सड़े कीच से ये कमल-फूल कैसे ॥ ५ ॥

ये कष्ट सारे थे किसने उठाये,
कंटीले ये जङ्गल थे किसने गिराये,
गरजते वे मृगराज कैसे भगाये,
औ' कैसे वो भागीरथी-तीर आये ॥
अहो ! यज्ञशाला ये क्यों कर रचाई ।
औ' क्यों कर ये सुन्दर सुगन्धी फैलाई ॥ ६ ॥

मैं त्रिशत् सहस्र इकट्ठे करूंगा,
मैं घर घर में दर दर भी फिरता रहूंगा,
मगर इतना जब तक न मैं कर सकूंगा,
नहीं तब तलक पैर घर में धरूंगा ॥
सुदारुण प्रतिज्ञा ये किसने थी धारी ।
कि आखिर तलक थी न धुन जिसने टारी ॥ ७ ॥

न देता था कोई भी जन यों सहारा,
ये आशा सहित हाथ किसने पसारा ।
निजैश्वर्य राशी को किसने बिसारा,
न आंधी अन्धेरे को कुछ भी विचारा ॥
करी आहुती तन औ' मन धन की अपने ।
औ' आखिर को ऐसे दिखाये हैं सपने ॥ ८ ॥

मैं आचार्य-आदेश कैसे फैलाऊं,
औ' मैं ब्रह्मचारी कहां से बुलाऊं,
मैं कुल को कहां और कैसे चलाऊं,
सहोद्योगियों को कहां पर मैं पाऊं ॥
यही एक चिन्ता यही एक लक्ष्य ।
भले दुःख आवे, करूंगा अवश्य ॥ ६ ॥

थे प्रस्थान आखिर को कर ही दिया था,
औ' बत्तीस पुत्रों को संग ले लिया था,
उतर रेल से रुख इधर ही किया था,
बस इक "ओ३म्" का हाथ झण्डा लिया था ॥
सुनो, अन्त को सब यहीं पर थे आये ।
तथा आके डेरे सभी ने लगाये ॥ १० ॥

ये जङ्गल में मङ्गल ये ऐसे हुआ था,
प्रयत्नों से पौदा लगाया गया था,
पसीना जो इस देह का तब बहा था,
तथा चूंकि उससे ये सिञ्चित हुआ था ॥
इसी ही लिये ये फला फूला इतना ।
औ' फूले फलेगा न जाने ये कितना ॥ ११ ॥

ये पुत्रों की अन्तिम मगर याचना है,
या केवल यही एक अभ्यर्थना है,
या अवशिष्ट केवल यही कामना है,
बस अन्तिम से अन्तिम यही प्रार्थना है ॥
कि ओझल न हो कुल की ज्योती प्रभू जी ।
कभी भी किसी भी तरह से प्रभू जी ॥ १२ ॥

आश्चर्यमय गुरुकुल

आज गुरुकुल की २५ वीं वर्ष-गांठ के दिन यदि उसके गत जीवन पर एक साधारण दृष्टि डाली जावे तो वह बड़ा आश्चर्य्यमय दीखता है। वह जीवन इतना आश्चर्य्यमय है, जीवन ने इतने जुदे २ भिन्न २ दृश्य दिखलाये हैं कि यदि मैं उसे एक नाटक से उपमा दूं तो कुछ अनुचित न होगा।

गुरुकुल की उत्पत्ति का दृश्य ही बड़ा अनोखा है। जिस तरह पीपल के विशाल वृक्ष का बीज बहुत छोटा होता है, उसी तरह, गुरुकुल का बीज भी बहुत छोटा था। पञ्जाब प्रतिनिधि सभा की अन्तरङ्ग में विचार पेश था कि बचा हुआ वेदभाष्य कैसे किया जावे। इस विषय में लोगों ने कई प्रकार की स्कीमें समाचार-पत्रों द्वारा प्रस्तुत की हुई थीं, जिन का अन्तिम निचोड़ कुलपिता की स्कीम थी। उस स्कीम में उन्होंने बताया था कि एक ऐसा आश्रम खोला जावे जहां कुछ विद्वान् लोग रहें जो वेदभाष्य करने के साथ साथ विद्यार्थियों को पढ़ाया भी करें और इस तरह वेदभाष्य के साथ ब्रह्मचर्य्याश्रम का पुनरुद्धार भी हो सकेगा। यह स्कीम बहुत ही छोटी थी। आज गुरुकुल जिस व्यापक रूप को धारण कर रहा है, वह उस समय उनके भी ध्यान में न था। प्रतिनिधि सभा के उस समय के कार्यकर्ता इस स्कीम को पास करना नहीं चाहते थे। परन्तु ब्रह्मचर्य्याश्रम के पवित्र नाम को सुनते ही आर्य लोगों में एक प्रकार की बिजुली का संचार हो गया। जिस दिन कुलपिता की प्रस्तावित यह स्कीम, आ०प्र०सभा पंजाब में पास हुई, उसे कभी भूल नहीं सकते। जब अधिक रात्रि के बीत जाने पर सभासद् थककर ऊंघने लग गये, तब अनावश्यक समझ कर यह स्कीम उस समय पेश कर दी गई। परन्तु इस स्कीम में अद्भुत बिजुली थी, क्योंकि इस स्कीम के आते ही सब लोग चौकन्ने होकर बैठ गये। थोड़े बाद विवाद के पीछे स्कीम पास हो गई, एक गुरुकुल का खोलना निश्चित होगया। उस के लिये तीन सहस्र रुपया मूलधन एकत्रित करना हुवा, और साथ ही यह स्वीकृत हुआ कि आठ हजार रुपया होजाने पर गुरुकुल खोल दिया जावे। अब यह देख कर आश्चर्य्य होगा कि उस समय तीन सहस्र रुपया ही गुरुकुल के लिए काफी समझा गया था, परतु उस समय इस कार्य की इस व्यापकता को कौन जान सका था।

गुरुकुल का खुलना स्वीकृत हो गया। दूसरे दिन ही कुछ लोगों ने धन देने की प्रतिज्ञा भी की, परन्तु

कई महीनों तक यह स्कीम कागज़ी पुलिन्दे से बाहिर न निकली। लोग उस समय इस काम को असम्भव समझते थे, इस लिए इसके लिए प्रयत्न करना भी कोई अपना कर्तव्य न समझता था। परन्तु ऋषि दयानन्द के लेखों ने कुलपिता के हृदय पर अंकित कर दिया था कि सारे आश्रमों की व्यवस्था सुधारने के लिए ब्रह्मचर्य प्रणाली का पुनरुद्धार अत्यन्त आवश्यक है। जब नींव ही कच्ची है तब उस पर खड़ा किया हुआ भवन मजबूत कैसे हो सका है। कुलपिता उस समय विकालत छोड़कर आजीविका का कोई और ही ढङ्ग सोच चुके थे और इस पवित्र कुल के आचार्य पद के लिए तय्यार नहीं होते थे,किन्तु गुरुकुल के खोलने को अत्यन्त आवश्यक समझ कर, उस के लिए रुपया एकत्र करने का भार उन्होंने अपने ही ऊपर ले लिया। उन्होंने यह प्रतिज्ञा करली कि तीस हज़ार रुपया इकट्ठा करने के पहिले मैं अपने घर में पांव न धरूंगा। २६ अगस्त १८९९ ई० को मन में यह दृढ़ संकल्प करके वह गुरुकुल के लिए धन इकट्ठा करने बाहिर निकले।

लगभग सात महीने तक संयुक्त प्रान्त, पंजाब, और दक्षिण हैदराबाद से घूम कर उन्होंने गुरुकुल के लिए भिक्षा मांगी। उस समय गुरुकुल के कार्य में जो जो कठिनाइयें थीं, उन का विस्तार से यहां वर्णन करना असम्भव है। उस समय सब से बड़ी कठिनाई इस विचार की नवीनता थी। उस समय तक यह एक ख़याली स्कीम थी; इस प्रणाली पर चलता हुवा कोई विद्यालय उदाहरण के लिए वे लोगों के साम्हने नहीं रख सके थे। लोगों के लिए यह विचार बिल्कुल ही नया था इस लिए भिक्षा मांगने के पहिले मुझे बताना पड़ता था कि गुरुकुल खोलने के क्या उद्देश्य हैं। गुरुकुल के विषय में लोगों की अनभिज्ञता का, इस से बढ़ कर क्या प्रमाण होगा कि कई स्थानों में लोग कुलपिता का ही नाम गुरुकुल समझते थे। ऐसे नये कार्य के लिए धन, आसानी से कैसे मिल सकता था? इस के सिवाय, नये ढंग के पढ़े लिखे लोगों की ओर से भी गुरुकुल की कार्यप्रणाली पर आक्षेप किये जाते थे। वे कहते थे कि सभ्यतामय बीसवीं सदी में ऐसे विद्यालय का चलना सर्वथा असम्भव है। पुराने समय को लाने के प्रयत्न को वे कुलपिता के दिमाग़ की निर्बलता बतलाते थे। सब से बड़ा आक्षेप यह था कि कौन ऐसे पाषाण हृदय माता पिता निकलेंगे जो पच्चीस वर्षों तक अपने प्यारे पुत्रों का बिछोड़ा सहने के लिए तय्यार होंगे। परन्तु कुलपिता को गुरुकुल शिक्षाप्रणाली के महत्व पर इतना पूरा भरोसा था कि इस तरह के आक्षेप उन्हें अपने

उद्देश्य से कुछ भी विचलित न कर सके। मुझे पूरा विश्वास था कि यदि एक बार नहीं तो कई बार ब्रह्मचर्याश्रम का संदेशा सुनाते रहने से लोगों की आंखे अवश्य खुलेंगी, और वे इस की आवश्यकता को अनुभव करेंगे। ऊपर कहे हुवे सब आक्षेपों के होते हुवे भी, जहां कहीं जाकर वे वर्तमान समय में ब्रह्मचर्य की और विद्यार्थियों की शोचनीय दशा का वर्णन करते थे, लोगों की आत्माओं को अपने साथ सहमत पाते थे। लोग युनिवर्सिटी की धर्मशून्य शिक्षा प्रणाली के दोषों को अनुभव कर रहे थे; आर्य जाति के शारीरिक, मानसिक और आत्मिक ह्रास को देख कर विचार शील लोग कांप रहे थे, परन्तु आर्यसमाज के पास ऐसे उपदेशकों का अभाव था जो धर्म के प्यासों तक धर्म का संदेशा पहुंचा सकें। अतएव जब लोगों को बतलाया गया कि इन सब त्रुटियों को दूर करने का एक मात्र उपाय गुरुकुल ही है, तब उनका ध्यान इधर आकर्षित होने लगा। इस छः सात महीनों के भ्रमण का फल यह हुआ कि तीस हज़ार रुपया इकट्ठा हो गया और सर्वसाधारण गुरुकुल की आवश्यकता को समझने लग गये।

रुपया एकत्र होने के पश्चात् भी कई मासों तक कार्यकर्त्ताओं की शिथिलता से यह कार्य खटाई में पड़ा रहा। सब से बड़ी रुकावट एकान्त स्थान न मिलने की थी। बहुत खोज और विचार के पश्चात्, हरिद्वार के समीप, श्री० मुंशी अमनसिंह जी के दिये हुवे कांगड़ी ग्राम में गुरुकुल का खोला जाना निश्चित हुआ और इस की अधिष्ठात्री सभा ने इस कार्य का सारा भार कुलपिता पर डाला।

वह दिन मुझे और मेरे साथी ३१ ब्रह्मचारियों को अच्छी तरह याद है, जो उस समय शिवरात्रि से ४ दिन पूर्व १९५८ वि० की फाल्गुन बदी १० (४ मार्च १९०२ ई०) को इस पवित्र भूमि में पहिले पहिल आये थे। हम चार बजे की गाड़ी से हरिद्वार उतरे और दयानन्द का चित्र सामने लेकर वेद मन्त्रों का उच्चारण करते हुए हम सीधे गुरुकुल-भूमि की ओर चले। हरिद्वार और कनखल के लोग कहते थे कि यहां दयानन्द का मठ बनेगा। कुछ अन्धेरे में हम गुरुकुल पहुंचे और जाते ही हम सब ब्रह्मचारियों ने गङ्गा की शीतल धारा में गोता लगाया। उस समय यहां बड़ा घना जंगल खड़ा था। उस में से थोड़े से स्थान को साफ़ कर के रहने के लिए और पढ़ाई के लिये कुछ छप्पर और तम्बू लगाये गये थे। आने के कुछ दिन पीछे गुरुकुल की स्थापना का उत्सव हुआ, जिस में चार सहस्र रुपया भी पूरा इकट्ठा न हो सका।

उस दिन और आज में बड़ा अन्तर है। गत पचीस वर्षों में गुरुकुल ने जो

गुरुकुल कुरुक्षेत्र के आश्रम का भीतरी दृश्य

गुरुकुल कुरुक्षेत्र की यज्ञशाला

गुरुकुल कुरुक्षेत्र के आश्रम का भीतरी दृश्य

गुरुकुल कुरुक्षेत्र की यज्ञशाला

उन्नति की है, उसे अचम्भे के सिवाय और कुछ नहीं कह सके। जो विद्यालय ३४ ब्रह्मचारियों से शुरु हुआ था, वहां आज ३३१ बालक शिक्षा पारहे हैं। इसके अतिरिक्त ७ शाखा-गुरुकुल हैं, जिन में एक कन्या-गुरुकुल भी है, और इन सब शाखाओं में लगभग ६७० के बालक और बालिकायें शिक्षा पा रहीं हैं। जिस गुरुकुल के विषय में यह पूछा जाता था कि वहां अपने पुत्रों को कौन भेजेगा वहां आज यह दशा है कि प्रति वर्ष डेढ़ सौ से ऊपर बालक और बालिकायें प्रविष्ट होती हैं। जहां घना जङ्गल था, वहां आज हरा भरा उद्यान दिखाई दे रहा है, और दो चार फूंस की झोपड़ियों की जगह आज आध मील तक फैली हुई गुरुकुल की इमारतें दिखाई दे रही हैं। जहां पहिले छोटा सा विद्यालय था वहां अब तीन महाविद्यालयों का संचालक विश्वविद्यालय है।

परन्तु मैं इन ईंट पत्थरों के फैलाव को गुरुकुल की वास्तविक उन्नति नहीं समझता। गुरुकुल की वास्तविक उन्नति के चिन्ह अन्दर और बाहर इन से जुदा हैं। बाहिर गुरुकुल की वास्तविक उन्नति उस की शिक्षा-प्रणाली के सामने लोगों का सिर झुकाना है। स्थान की कमी मुझे आज्ञा नहीं देती कि मैं शिक्षा प्रणाली के विषय में उन परिवर्तनों का वर्णन करूं जो इस समय विद्वान् लोगों के विचारों में हो रहे हैं। किन्तु इस में कोई सन्देह नहीं कि भारतवर्ष का शिक्षित समाज हमारी शिक्षाप्रणाली के महत्त्व को मानने लग गया है और हमारे परीक्षण को टकटकी लगाये देख रहा है। गुरुकुल की भीतरी अवस्था को वे ही लोग जान सकते हैं जो गुरुकुल के अन्दर काम करते हैं। जितना ही गुरुकुल विषयक लोगों का अनुभव बढ़ रहा है, उतना ही उन्हें दृढ़ विश्वास होता जाता है कि यदि कोई ऐसी संस्था है जो धार्मिक, आज्ञापालक, परिश्रमी, उत्साही और समाजसेवी मनुष्य बना सका है तो वह गुरुकुल ही है।

———

मेरा तपोवन

१

जहाँ विश्वमें सब से पहिले हुआ सवेरा।
है वही भूमि वह—यही तपोवन मेरा ॥

२

जन्हु-सुता की जहाँ विमल धारा बहती है।
जिस पर उच्च हिमाचल की छाया रहती है।
जहाँ खड़े हैं विकसित द्रुम-दल शोभाशाली।
जहाँ छिटकती शुभ्र चाँदनी खिलने वाली।
जहाँ 'प्रकृति' में सब से पहले हुवा सवेरा।
है यही भूमि वह—यही तपोवन मेरा ॥

३

जहाँ धर्म की ज्योति निराली नभ में छाई।
'ब्रह्म ब्रह्म' की टेर जहाँ नित देत सुनाई।
घने वनों में जहाँ दिव्य रव गूंज रहा है।
जहां हृदय आनन्द-सिन्धु में डूब रहा है।
जहाँ 'भक्ति' में सब से पहले हुवा सवेरा।
है यही भूमि वह-यही तपोवन मेरा ॥

४

जहाँ खड़ी स्वाधीन-पताका फहराती है।
जिसे देख कर इन्द्र-ध्वजा भी शरमाती है।
धर्म-युद्ध के हेतु जहाँ उठतीं तरवारें।
जहाँ चण्डिका नाच रही है कर हुंकारें।
जहाँ 'शक्ति' में सब से पहले हुवा सबेरा।
है यही भूमि वह-यही तपोवन मेरा ॥ ३ ॥

पं० विद्यानिधि सिद्धान्तालंकार

गुरुकुल-शिक्षा--प्रणाली

(लेखक— श्री प्रो० चन्द्रमणि जी विद्यालङ्कार पालीरत्न)

शिक्षा के उद्देश्य

बड़े २ विद्वान विभिन्न दृष्टिओं से विचार करते हैं कि शिक्षा के क्या उद्देश्य होने चाहियें, परन्तु वे इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर उतनी स्पष्टता से नहीं देते जितनी स्पष्टता और निश्चयात्मकता से देना चाहिए। निरुक्तकार यास्काचार्य इस गम्भीर प्रश्न का हल तीन अक्षरों के 'आचार्य' शब्द में पाते हैं। यह संस्कृत भाषा की अपूर्व और विचित्र महिमा है कि उसका प्रत्येक शब्द अपने में बड़े विस्तृत ज्ञान को ढाँपे रखता है। 'आचार्य' का निर्वचन करते हुए यास्काचार्य लिखते हैं— "आचार्य आचारं ग्राहयति, आचिनोत्यर्थान्, आचिनोति बुद्धिम्" अर्थात् आचार्य वह है जो शिष्य को सदाचार ग्रहण करावे, उसमें शब्दों के अर्थों का सञ्चय करे, और उसकी बुद्धि को बढ़ावे। बस, शिक्षा के एकमात्र यही तीन उद्देश्य होने चाहियें कि (१) विद्यार्थी के सदाचार का निर्माण किया जावे, (२) उसे प्रत्येक शब्द के यथार्थ अर्थ का साक्षात्कार कराते हुए उसमें वस्तुओं का यथार्थ बोध संचित कर दिया जावे, (३) और उसकी ईश्वर-प्रदत्त बुद्धि को पूर्णतया विकसित किया जावे।

यदि वर्तमान युनिवर्सिटियों की शिक्षा-पद्धति की ओर दृष्टि डाली जावे तो हमें साफ़ तौर पर विदित होता है कि सदाचार-निर्माण, पदार्थविबोध और बुद्धि-विकाश, शिक्षा के इन तीन उद्देश्यों में से प्रथम और अन्तिम उद्देश्य को सर्वथा भुलाया हुआ है। सदाचार-निर्माण तो शिक्षा के क्षेत्र में से बहिष्कृत है ही, परन्तु इसके साथ साथ कृत्रिम पाठप्रणाली की यन्त्रकला में से बिना किसी ननु नच के प्रत्येक विद्यार्थी को गुज़ारने से उनकी ईश्वरप्रदत्त बुद्धि का विकाश भी नहीं हो पाता। होना तो यह चाहिए था कि जैसे सूर्योदय के होने पर सूर्य-प्रकाश से रोग-कृमि नष्ट होजाते हैं, चोर चोरी से और जार जारी से विरत होजाते हैं, मलिनता दूर हो जाती है और बन्द कमल खिल जाता है, उसी प्रकार विद्योदय के होने पर विद्या-प्रकाश से काम, क्रोध, लोभ, मोहादि मल दूर हों, पाप-कृमि नष्ट हों, और बुद्धि-कमल का विकाश हो। परन्तु इस माया-रूप-धारिणी विद्या से पाप-मल की वृद्धि होती है, और बुद्धि-कमल बिना खिले ही मुरझा जाता है।

एवं, शिक्षा के दूसरे उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए किताबी शिक्षा की ओर ही ध्यान दिया जाता है। ऐसी शिक्षा

से दूसरा उद्देश्य भी पूर्णतया पूरा नहीं होता, पदों की रटन्त पर पूरा बल लगाया जाता है, पदार्थावबोध यथार्थ में नहीं होता। इससे पाठक समझ सकते हैं कि आधुनिक युनिवर्सिटी-शिक्षा-पद्धति कितनी दोषपूर्ण है। यह शिक्षा-पद्धति वह है जो कि शिक्षा के तीनों उद्देश्यों में से किसी भी उद्देश्य को सच्चे अर्थों में पूर्ण नहीं करती। इसलिए हमारे ऋषियों ने जो गुरुकुल-शिक्षा-प्रणाली प्रचलित की थी, वह विवेकपूर्ण है और वही वास्तव में मनुष्य को मनुष्य बनाने वाली है। वह शिक्षा-प्रणाली कैसी है, उसे मैं ऋषि दयानन्द कृत सत्यार्थप्रकाश के आधार पर ही बतलाना चाहता हूँ जिससे विद्वान् लोग उस पर अधिकाधिक विचार करते हुए विद्यार्थियों के जीवनों को सफल बना सकें।

गुरुकुल-प्रवेश से पूर्व अपनी सन्तान के प्रति माता पिता के कर्त्तव्य-

(१) जन्म से पाँचवें वर्ष तक माता और छठे से आँठवें वर्ष तक पिता अपनी सन्तान को शिक्षा दिया करे।

(२) जब पाँच वर्ष का लड़का वा लड़की हो तब उन्हें देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करावें और अन्य देशीय भाषाओं के अक्षरों का भी।

(३) इसके पश्चात् जिन से उत्तम शिक्षा, विद्या, धर्म तथा परमेश्वर का बोध हो, और जिन से माता पिता आचार्य विद्वान् अतिथि राजा प्रजा कुटुम्ब बन्धु भगिनी तथा भृत्य आदि से कैसे बर्तना चाहिए, इसका उत्तम ज्ञान प्राप्त हो, उन मंत्रों तथा श्लोकों सूत्रों और गद्य पद्यों को भी अर्थ सहित कण्ठस्थ करावें।

(४) इसके अतिरिक्त जो २ विद्या-धर्म-विरुद्ध भ्रान्तिजाल में गिराने वाले व्यवहार हैं, उनका भी उपदेश करदें जिससे उन्हें भूत प्रेत आदि मिथ्या बातों पर विश्वास न हो।

(५) माता पिता का कर्त्तव्य है कि वे अपनी सन्तानों को वीर्यरक्षण में आनन्द और वीर्यनाशन से दुःख की प्राप्ति होती है, इसे भी भली भाँति जतला दें। जैसे— "देखो, पुत्रो! जिसके शरीर में वीर्य सुरक्षित रहता है, उसे आरोग्यता बुद्धि बल और पराक्रम की वृद्धि होकर बहुत सुख की प्राप्ति होती है। वीर्यरक्षा की यही रीति है कि तुम अाठों मैथुनों से पृथक् रहकर उत्तम शिक्षा और पूर्ण विद्या को प्राप्त करो। जिसके शरीर में वीर्य नहीं होता वह नपुंसक तथा महाकुलक्षणी बन जाता है, वह प्रमेह रोग से युक्त होजाता है जिससे वह दुर्बल निस्तेज और निर्बुद्धि हुआ हुआ उत्साह साहस धैर्य बल पराक्रम आदि से रहित होकर नष्ट होजाता है। यदि तुम लोग सुशिक्षा और विद्या के ग्रहण तथा वीर्य की रक्षा करने में इस समय चूकोगे तो पुनः इस जन्म में तुमको यह अमूल्य समय प्राप्त नहीं होसकेगा।

जब तक हम लोग गृहकर्मों के करने वाले हैं, तब तक तुमको विद्या का ग्रहण और शरीर का बल बढ़ाना चाहिए।"

गुरुकुल का स्थान कैसा हो

(१) विद्या पढ़ने का स्थान एकान्त देश में होना चाहिए।

(२) पाठशालाओं से एक योजन अर्थात् ४ कोस दूर ग्राम या नगर रहे।

(३) लड़के और लड़कियों की पाठशाला दो कोस एक दूसरे से दूर होनी चाहिये।

गुरुकुल--प्रवेश के नियम

(१) इसमें राजनियम और जाति नियम होना चाहिए कि आठवें वर्ष से आगे कोई अपने लड़कों और लड़कियों को घर में न रख सकें, पाठशाला में अवश्य भेज देवें, जो न भेजे वह दण्डनीय हो।

(२) लड़कों को लड़कों की और लड़कियों को लड़कियों की पाठशाला में भेजना चाहिए।

गुरुकुल के नियम

(१) जो अध्यापक, पुरुष वा स्त्री दुष्टाचारी हों, उन से शिक्षा न दिलावें, किन्तु जो पूर्ण विद्यायुक्त धार्मिक हों, वे ही पढ़ाने और शिक्षा देने के योग्य हैं।

(२) जो अध्यापिका और अध्यापक, भृत्य वा अनुचर हों, वे कन्याओं की पाठशाला में सब स्त्रियें और बालकों की पाठशाला में सब पुरुष हों।

(३) कन्याओं की पाठशाला में ५ वर्ष का लड़का, और लड़कियों की पाठशाला में ५ वर्ष का लड़का भी न जाने पावे। अर्थात्, जब तक वे ब्रह्मचारी वा ब्रह्मचारिणी रहें, तब तक लड़का या लड़की का दर्शन स्पर्शन एकान्त-सेवन भाषण विषय-कथा परस्परक्रीड़ा विषय का ध्यान और सङ्ग, इन आठ प्रकार के मैथुनों से अलग रहें। अध्यापक लोग उन को इन बातों से बचावें, जिस से वे उत्तम विद्यावान् सुशिक्षित सुशील और उत्तम स्वभाव वाले तथा शरीर और आत्मा से बलवान् होके आनन्द को नित्य बढ़ा सकें।

(४) सब को तुल्य वस्त्र खानपान और आसन दिये जावें, चाहे वे राजकुमार वा राजकुमारी हों और चाहे दरिद्र के सन्तान हों, सब को तपस्वी होना चाहिये।

(५) माता पिता अपने सन्तानों से वा सन्तान अपने माता पिता से न मिल सकें और न किसी प्रकार का पत्रव्यवहार एक दूसरे से कर सकें, जिस से वे सारी चिन्ताओं से रहित होकर केवल विद्या बढ़ाने की चिन्ता रखें।

(६) जब भ्रमण करने जावें तब उन के साथ अध्यापक रहें जिस से वे किसी प्रकार की कुचेष्टा न कर सकें।

(७) जहां गुरुजन शिष्यों का ताड़न करते हुए उन्हें अमृत पिलाते हैं और लाड़न करते हुए उन्हें अपने

ही हाथों से विष-पान कराके उन्हें नष्ट भ्रष्ट कर देते हैं, वहां शिष्यां को भी चाहिए कि वे ताडना से सदा प्रसन्न और लाड़न से सदा अप्रसन्न रहा करें, इस से विपरीत आचरण कभी न करें। परन्तु गुरुजनों को सदा ध्यान रखना चाहिये कि वे ईर्ष्या या द्वेष से कभी ताड़न न करें, अपितु ऊपर से भय-प्रदन और भीतर से कृपादृष्टि रखें।

ऋषि दयानन्द को अपना आचार्य मानने वाले आर्य लोग आचार्य के गुरुकुल-सम्बन्धी इन संकेतों पर विशेष ध्यान दें और देखें कि वे किस मार्ग को ओर चल रहे हैं, और जो आर्य अपनी सन्तान को गुरुकुलों में न भेज कर गुरुकुल शिक्षा प्रणालो की अवहेलना करते हैं, क्या वे अपने आचार्य की आज्ञानुसार दण्ड के भागो नहीं?

कुल--वन्दना

जय जय जननि! कुलदेवि! तुझ को बार बार प्रणाम है।
यह मञ्जु अञ्जलि प्रेममय, अर्पित तुझे अभिराम है॥ १॥

महिमा हिमालय की शिखायें, गा रहीं तेरी स्वयम्।
भागीरथी की बीचियों में, स्पष्ट तेरा नाम है॥ २॥

हम देखते तुझ में सदा, नव प्रेम का उल्लास है।
हम को मधुरतम गोद ही, तेरा परम विश्राम है॥ ३॥

तेरे विशद आकाश की, स्वाधीनता में हम पले।
स्वर्गीयता—मिश्रित जहां, उज्ज्वल उषा का धाम है॥ ४॥

तेरे वनों की स्तब्धता में, दिव्य कोई राग है।
सब ओर से मानो बरसता, पुण्य का परिणाम है॥ ५॥

तूने हृदय मोती पिरो कर, प्रेम के दृढ़ सूत्र में।
अनुपम बनाई यह हमारी, चारु मुक्ता दाम है॥ ६॥

तू ही बजाती बीणा वह, जिस के कि हम सब तार हैं।
जो तार सारे एक स्वर हो, कह रहे अविराम हैं॥ ७॥

हम हैं सदा तेरे, हमारी तू हृदय-वर-वासिनी।
सम्बन्ध यह तेरा हमारा, नित्य है निष्काम है॥ ८॥

गुरुकुल-वृक्ष

'आश्चर्यमय गुरुकुल' शीर्षक वाले लेख में दर्शाया जा चुका है कि किस प्रकार १९०२ ई० की ४ मार्च को कांगड़ी की पवित्र भूमि में लगाया हुआ नन्हा सा गुरुकुल रूपी वृक्ष फूला और फला। इस वृक्ष के जो महत्त्व हैं, वे संक्षेप से इस प्रकार कहे जा सकते हैं कि यह संपूर्ण राष्ट्र का अपनाया हुआ है, छूत अछूत सब को आश्रय देने वाला है, उत्तम जीवन का प्रदाता है, सन्तप्तों को शान्ति देता है, भारत के प्राचीन गौरव का प्रत्यक्षतया भासमान चिन्ह है, और भारतभूमि का मुख उज्वल करने वाला है। वर्तमान समय में वेद महाविद्यालय महाविद्यालय और आयुर्वेद महाविद्यालय, ये तीन बड़े २ स्कन्ध हैं। इस वृक्ष को उत्पन्न हुए ४ मार्च १९२७ ईस्वी को २५ वर्ष व्यतीत होगए। गत १९ वर्षों में इस वृक्ष के सिंचन में लगभग २० लाख ७५ हज़ार रुपए व्यय हुए, नक़द और जायदाद मिलाकर लगभग साढ़े दस लाख रुपए इस की रक्षा के लिए विद्यमान हैं, और इस वर्ष के १५ फल मिला कर कुल १९२ फल इस वृक्ष से आर्यजाति को प्राप्त हो चुके हैं। इस सुप्रसिद्ध पवित्र वृक्ष और इस की सात शाखाओं की निर्मल छाया में बैठकर इस समय लगभग एक सहस्र बालक और बालिकायें शिक्षा पा रही हैं। यह वृक्ष अमर श्रद्धानन्द के हाथों से लगाया हुआ है और उन्हीं के रुधिर से सींचा हुआ है। ऐसे अद्भुत वृक्ष की पच्चीसवीं वर्ष-गांठ मनाते हुए आर्य जाति को कुछ विशेष प्रण करने चाहियें। आर्य-जाति से मैं केवल दो प्रणों की अभ्यर्थना करता हूँ; एक तो यह कि अपने आचार्य ऋषि दयानन्द की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए इस जाति का प्रत्येक व्यक्ति अपना सन्तानों को विष-वृक्षों के नीचे शिक्षा के लिए न बैठा कर गुरुकुल-वृक्ष के ही नीचे बैठाना अपना कर्तव्य समझें, और दूसरा, इस वृक्ष के सिंचन में तन मन और धन, किसी की कमी न रखें। ऐसा न हो कि आर्यजाति की असावधानता से अमर श्रद्धानन्द का लगाया हुआ यह भारत-पावक वृक्ष कभी मुरझा कर सूख जावे, और फिर पीछे पछता कर सिर नीचा किये सब से यह सुनना पड़े कि अब पछताने से क्या होत है जब चिड़ियां चुग गईं खेत। अतः, ऐ आर्यजाति के वीरो, उठो, कमर कस कर तय्यार होवो, अब अधिक प्रतीक्षा का काल नहीं रहा।

चन्द्रमणि

कुलगीत

प्राणों से हम को प्यारा 'कुल' हो सदा हमारा॥

(१)

विष देने वालों के भी बन्धन कटाने वाले,
मुनियों का जन्म-दाता कुल हो यही हमारा॥

(२)

'कट जाय सिर न झुकना' यह मन्त्र जपने वाले,
वीरों का जन्म दाता कुल हो यही हमारा॥

(३)

स्वाधीन्य-दीप्तितों पर सब कुछ बहाने वाले,
धनियों का जन्म दाता कुल हो यही हमारा॥

(४)

निज जन्म भूमि भारत को क्लेश से छुड़ा कर,
गौरव बढ़ाने वाला कुल हो यही हमारा॥

(५)

तन मन सभी न्योछावर कर वेद का संदेसा,
जग में ले जाने वाला कुल हो यही हमारा॥

(६)

हिमशैल तुल्य ऊंचा, भागीरथी सा पावन,
भटकों का मार्ग-दर्शक दुखियों का हो सहारा॥

(७)

आजन्म ब्रह्मचारी ज्योती जगा गया है,
अनुरूप पुत्र उस का कुल हो यही हमारा॥

गुरुकुल कुरुक्षेत्र के अध्यापक गण तथा ब्रह्मचारीवर्ग

गुरुकुल कुरुक्षेत्र के अध्यापक वर्ग तथा कार्यकर्त्ता

गुरुकुल काङ्गड़ी की शाखायें

(१)

शाखा-गुरुकुल मुलतान

डेराबुड्ढ मुलतान के चौधरी म० रामकृष्ण जी के भूमि और नकद दान देने पर और शाखा गुरुकुल खोलने के लिए बहुत आग्रह करने पर आर्य-प्रतिनिधि सभा पंजाब की अन्तरंग सभा ने २ अगस्त १९०८ को दानी के दान को स्वीकृत करके शाखा खोलने का निश्चय किया। तदनुसार १३ फर्वरी १९०९ के दिन डेराबुड्ढ में इस गुरुकुल की स्थापना हुई जिस का नाम "शाखा-गुरुकुल देवबन्धु" के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह गुरुकुल कांगडी की सब से पहली शाखा थी। इस शाखा के प्रबन्ध के लिए स्थानिक आर्यपुरुषों की एक गुरुकुल-सभा बना दी गई जो बड़े उत्साहमय पुरुषार्थ और जोश से काम करने लगी। थोड़े ही दिनों में कई हज़ार रुपयों की लागत के पक्के मकान और कूप आदि तय्यार होगए। परन्तु दौर्भाग्य से दो तीन वर्षों में ही दानी चौधरी जी की मति बदल गयी और उन्होंने गुरुकुल के चलाने में अनेक बाधायें डालनी शुरु कीं। लाचार होकर गुरुकुल देवबन्धु से उठाना पड़ा, और मुलतान शहर के बाहिर हजूरीमल के बाग में मुलतान के प्रतिष्ठित वकील ला० परमानन्द जी ने जो अपनी बड़ी २ दो कोठियें अस्थायी तौर पर इस के निमित्त अर्पण कर दी थीं वहां रखा गया। वहां आकर उस समय के मुख्याधिष्ठाता पं० चन्द्रमणि जी विद्यालंकार और स्थानिक सभा के मंत्री ला० मदनलाल जी ने अनेक यत्न किए कि शायद चौधरी जी की मति फिर बदल जावे, परन्तु कुछ परिणाम न निकला। तब मुलतान से लगभग तीन मील की दूरी पर ताराकुण्ड के समीप स्थायी तौर पर इस शाखा को स्थापित किया गया। यह भूमि ६५॥ बीघे है, जिस का आनुमानिक मूल्य ६ सहस्र रु० है। अब तक मकानों और कूप आदि पर ३० सहस्र रु० व्यय हो चुके हैं। इसकी पुरानी देवबन्धु वाली भूमि के सम्बन्ध में चौधरी रामकृष्ण जी के साथ झगड़ा चल रहा था, वह गतवर्ष निपट गया है और वहां के मकानों की क्षतिपूर्त्ति के लिए चौधरी जी ने १७ सहस्र रु० आर्य-प्रतिनिधि सभा पंजाब को दे दिए हैं।

पहले इस शाखा में १०श्रेणियों तक पढ़ाई का प्रबन्ध था। कई वर्ष यहां के दशम श्रेणी के ब्रह्मचारी गुरुकुल कांगडी अधिकारी परीक्षा के लिए जाते रहे और बड़े योग्य सिद्ध हुए। इस वर्ष तक २० स्नातक ऐसे हो चुके हैं जो यहीं से अधिकारी परीक्षा के लिए गए थे। परन्तु इस वर्ष स्थानिक प्रबन्धकर्त्री सभा ने यह निश्चय कर लिया है कि यह शाखा प्रथम आठ

श्रेणियों तक ही रक्खी जावे। तदनुसार इसकी नवम श्रेणी गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ भेजदी गई हैं। अब इस समय इस शाखामें १०५ ब्रह्मचारी शिक्षा पा रहे हैं।

(२)

शाखा—गुरुकुल कुरुक्षेत्र

संवत् १९६७ में थानेसर शहर के सुप्रसिद्ध रईस ला० ज्योतिप्रसाद जी के मन में यह शुभ विचार उत्पन्न हुआ कि वे भी गुरुकुल कांगड़ी का शाखा अपने यहां खुलवायें। इन्होंने अपने ये विचार महात्मा मुन्शीराम जी [श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज] मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी के सामने रखे। तदनुसार सं० १९६९ को १ वैशाख को श्री महात्मा मुन्शीराम जी ने इस गुरुकुल की आधार-शिला रक्खो। ला० ज्योतिप्रसाद जी रईस ने प्रारम्भ में १००००) नकद तथा १०४८ बीघा भूमि इस कार्य के अर्पण की।

प्रारम्भ में इस गुरुकुल के मुख्याध्यापक श्री पं० विष्णुमित्र जी रहे। प्रबन्धकर्ता का काम ला० ज्योतिप्रसाद जी करते रहे, और उनके मित्र ला० भगीरथलाल जी भी तन मन धन से गुरुकुल की सहायता करते रहे।

दौर्भाग्य से गुरुकुल खुलने के १ वर्ष बाद ही ला० ज्योतिप्रसाद जी का स्वर्गवास हो गया। उनकी मृत्यु से गुरुकुल को बड़ी हानि हुई। उनके बाद कैथल के ला० नौबतराय जी निस्स्वार्थ-भाव से बड़ी लगन के साथ प्रबन्धकर्ता का कार्य करने लगे। इस प्रकार दिन प्रतिदिन यह गुरुकुल अधिकाधिक उन्नति करता गया। संवत् १९७३ में इस गुरुकुल का प्रबन्ध एक स्थानीय कमेटी के हाथ में दिया गया। परन्तु फिर इसका प्रबन्ध मुख्याधिष्ठाता कांगड़ी के सीधे निरीक्षण में ही आ गया। सं० १९८० में प्रथम बार यहां से ९ ब्रह्मचारी ८ म श्रेणी पास करके गुरुकुल कांगड़ी गये और तब से प्रतिवर्ष ८ म श्रेणी के बाद ब्रह्मचारी वहां पर जाते हैं।

वर्त्तमान समय में इस गुरुकुल में ८ श्रेणियें हैं। जिनमे लगभग १५० ब्रह्मचारी भारत के भिन्न २ प्रान्तों से आकर शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। अध्यापकों की संख्या ९ है। पं० सोमदत्त जी विद्यालंकार इस शाखा के मुख्याध्यापक तथा प्रबन्धकर्ता हैं।

स्थान— देहली से कालका जाते समय मार्ग में कुरुक्षेत्र जन्कशन नाम का एक स्टेशन है। इस स्टेशन से पुहोवा तीर्थ को १ पक्की सड़क जाती है। इसी पक्की सड़क के बायें हाथ कुरुक्षेत्र तीर्थ से १ मील दूर गुरुकुल कुरुक्षेत्र बना हुआ है।

गुरुकुल के प्रथम वार्षिकोत्सव के अवसर पर इसका बुनियादी पत्थर रखते समय गुरुकुल के आचार्य श्री महात्मा मुन्शीराम जी [श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी] ने निम्न लिखित वाक्य कहे थे "आज हमारी प्यारी भारत-भूमि पराधीनता की बेड़ी में जकड़ी हुई है। एक समय था जब कि संपूर्ण संसार के राजा आर्यावर्त के सम्राट् के चरण-रज को माथे पर लगाने में

अपना गौरव समझते थे। आज से लगभग ५००० वर्ष पूर्व इसी कुरुक्षेत्र भूमि में आर्यावर्त के नाश का बीज बोया गया था। आज उसी भूमि में आर्यावर्त की उन्नति के लिये यह बीज बोया गया है"।

कुरुक्षेत्र की इस भूमि में शाखा स्थापित करने का रहस्य तथा उद्देश्य कुलपति जी के भाषण की उपर्युक्त पंक्तियों से समझ में आ जाता है।

आज गुरुकुल को स्थापित हुए १६ वर्ष व्यतीत हुये हैं। इस थोड़े से समय में गुरुकुल ने पर्याप्त उन्नति की है। वर्त्तमान समय में इस गुरुकुल की लगभग ८००००) अस्सी हज़ार रुपये की लागत की पक्की इमारतें हैं। लगभग २०० ब्रह्मचारियों के निवास तथा पठन पाठन के लिये पर्याप्त मकान हैं। आश्रम से उत्तर की तरफ ब्रह्मचारियों के स्नान के लिये स्नानगृह बना हुआ है जिस में लगभग ७१ ब्रह्मचारी एक साथ स्नान कर सकते हैं। दक्षिण की तरफ़ भोजन-भण्डार है। उसके पास ही परिवार-गृह बने हुए हैं।

गोशाला—ब्रह्मचारियों को प्रातः सायं ताजा दूध दिया जा सके, इसके लिये गुरुकुल की अपनी गोशाला है, जिसमें १०० के लगभग पशु हैं। कृषि आदि के लिये ५ जोड़ी बैलों की रखी हुई हैं।

वाटिका—ब्रह्मचारियों को ताजी सब्ज़ी तथा फल आदि देने के लिये ३० बीघे पक्के का एक बाग है, जिस से ब्रह्मचारियों के लिये प्रतिदिन दो अढ़ाई मन के लगभग ताज़ी सब्ज़ी निकल आती है। अनार, अंगूर, आड़ू सन्तरे, आम, अञ्जीर, केला आदि फल भी पर्याप्त मात्रा में इस वाटिका से ब्रह्मचारियों के लिये प्राप्त हो जाते हैं।

चिकित्सालय—वर्त्तमान समय में आश्रम के बीच में ही चिकित्सालय तथा रोगी-गृह हैं। शीघ्र ही आश्रम से कुछ दूर पश्चिम की तरफ़ पृथक् चिकित्सालय गुरुकुल के प्रबन्धकर्ता स्वर्गीय् ला० नौबतराय जी के स्मारक में बनाया जायगा। गुरुकुल के १४ वें वार्षिकोत्सव के अवसर पर श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने इसकी आधार-शिला रखी थी।

पुस्तकालय—विद्यालय के साथ ही गुरुकुल का अपना पुस्तकालय है जिसमें इस समय लगभग २००० पुस्तकें हैं।

विज्ञान-भवन—विद्यार्थियों को विज्ञान की शिक्षा देने के लिये विज्ञान भवन में लगभग २०००) के मूल्य के उपकरण हैं।

कला-भवन—विद्यार्थियों को कपड़ा बुनना तथा अन्य दस्तकारी का काम सिखलाने के लिये शीघ्र ही कला-भवन की योजना की जाने वाला है। खड्डियें आ चुकी हैं, कार्य शीघ्र ही प्रारम्भ करने का विचार है।

जायदाद—इस गुरुकुल के पास लगभग २२०० बीघा ज़मीन है जिस में चार कूप हैं।

(३)

शाखा—गुरुकुल मटिण्डू

यह संस्था हरियाणा प्रान्त मे शिक्षा की भारी न्यूनता का अनुभव करके श्री चौधरी पीरुसिंह आदि उत्साही आर्यसज्जनों द्वारा जिला रोहतक के मटिण्डू ग्राम के समीप, यमुना नहर की एक छोटी शाखा के किनारे अत्यन्त रमणीक स्थान पर १९७२ वि० में स्थापित की गई, जिस की आधार शिला श्रीयुत पूज्यपाद श्रद्धेय स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के कर-कमलों द्वारा रक्खी गई। यह संस्था गुरुकुल विश्वविद्यालय कांङ्गड़ी की शाखा रूप में खोली गई है।

विशेषतायें— (१) यह संस्था सर्वथा निःशुल्क संस्था है। इस मे ब्रह्मचारियों को शिक्षा तो निःशुल्क दी ही जाती है किन्तु उनके भरण पोषण का व्यय भी गुरुकुल की ही ओर से होता है।

(२) ब्रह्मचारियों को इस योग्य बनाया जाता है कि अवसर पड़ने पर प्रत्येक कार्य को स्वयं कर सकें।

प्रबन्ध— संस्था का प्रबन्ध एक कमेटी के आधीन है। जो महाशय १००) एक दम या ६) वार्षिक चन्दा देवे, वह कमेटी का सदस्य हो सकता है। इस के मुख्याध्यापक गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक श्री प० निरञ्जनदेव जी विद्यालंकार हैं। इन्हीं के आधीन विद्यालय तथा आश्रम आदि का सम्पूर्ण प्रबन्ध है।

विद्यालय—इस समय विद्यालय में ७ श्रेणियां हैं और लगभग ६० ब्रह्मचारी विद्याध्ययन कर रहे हैं। ६ साल से लगातार यहां के विद्यार्थी उत्तीर्ण होकर गुरुकुल कांङ्गड़ी में अध्ययनार्थ जाते हैं। शाखाओं से जो ब्रह्मचारी कांगड़ी जाते हैं, उन्हें वहां के नियमानुसार शुल्क देना पड़ता है, किन्तु यहां के ब्रह्मचारियों के लिए शुल्क में ५) की रिआयत करदी गई है। विद्यालय की पाठविधि गुरुकुल कांगड़ी की पाठविधि के अनुसार है।

वाटिका— नहर के किनारे पर गुरुकुल की एक रम्य वाटिका है, जिस में विविध प्रकार के फलों के वृक्ष तथा नानाप्रकार के मनोहर पुष्पों के पौदे है। यह वाटिका समयानुसार शाक की आवश्यकता को भी पूरी कर सकती है।

गोशाला— ब्रह्मचारियों के दुग्धपान के लिए एक गोशाला भी है, जिस मे इस समय ४० गौएं तथा १० भैंसें है। यहां के ज़मीदारों से वैशाख तथा ज्येष्ठ मास में गोशाला के लिये भूसा एकत्रित किया जाता है, जिस से गोशाला को पर्याप्त सहायता मिल जाती है।

सहायता— इस हरियाणा प्रान्त के जाट ज़मीदार बड़े उत्साही तथा

दानवीर हैं। उन्हीं के उत्साह का फल है कि यह संस्था निःशुल्क होती हुई भी उत्तमता से अपना कार्य कर रही है। जनरल कमेटी द्वारा नियुक्त डेपुटेशनों से वैशाख और ज्येष्ठ के महीनों में जमीदारों से अनाज और गौओं के लिए भूसा तथा माघ मास में गुड़ इकट्ठा किया जाता है। अनाज सालभर में कम से कम ६०० मन के लगभग एकत्रित हो जाता है, और विवाह संस्कारों में प्रतिवर्ष दो या अढ़ाई हजार के लगभग धन दान में आजाता है। इस के अतिरिक्त वार्षिक उत्सव पर दो या अढ़ाई हज़ार के लगभग धन प्रतिवर्ष प्राप्त होता है। इस प्रकार यह संस्था ११ वर्षों से इस प्रान्त में सफलता से अपना कार्य कर रही है।

सम्पत्ति—इस गुरुकुल के पास ५६ बीघे ज़मीन है जिस का मूल्य लगभग ५६००) है। अब तक मकानों और कूप पर लगभग ५५००) व्यय हुए हैं और गोशाला के पशुओं का मूल्य लगभग ५०००) है। एव, इस गुरुकुल की संपूर्ण संपत्ति १६०००) की है। इस संस्था का वार्षिक खर्च १०००) के लगभग है।

नवीन मकानात— इस संस्था की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को देखकर इसके मकानात में वृद्धि करने की अत्यन्त आवश्यकता अनुभव हुई है। अतएव उनके बनवाने के लिए १६५०) की एक लाख दस हज़ार ईंटें और २००) का चूना तथा २००) के गार्डर, टीन आदि सब सामान समीप के बन में पड़ा हुआ है। पर्याप्त धनराशि प्राप्त हो जाने पर कार्य प्रारम्भ किया जावेगा। दानी महाशयों को इधर ध्यान देना चाहिए।

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी और गुरुकुल मटिण्डू— यह संस्था श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के ही कर-कमलों से स्थापित हुई थी। इसकी उन्नति के लिए उन्हें अत्यन्त चिन्ता रहती थी। वे इसके उत्सव और अन्य समयों पर भी पधारा करते थे। इस संस्था के नूतन भवन बनवाने के लिए उन्होंने कई स्थानों से सहायता दिलवाई। बलिदान से एक मास पूर्व जो मटिण्डू के मुख्याधिष्ठाता को पत्र लिखा, उस पर आर्यजनता को विशेष ध्यान देना चाहिये। उस में वे लिखते है—"तुम्हारे गुरुकुल के लिए मुझे विशेष ध्यान है। जब कभी मौका मिला इस के भवन निर्माणार्थ सहायता दिलवाऊंगा।"

(४)

शाखा—गुरुकुल रायकोट

गुरुकुल रायकोट की आधार-शिला श्रद्धेय श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने सम्वत् १९७६ वि० में रखी थी। इसके मुख्य सञ्चालक श्री स्वामी गङ्गागिरि जी महाराज हैं।

इस गुरुकुल के दो विभाग हैं, एक

गुरुकुल कांगड़ी का शाखा-विभाग, और दूसरा उपदेशकविद्यालय का। प्रथम चार श्रेणियों तक गुरुकुल कांगड़ी का शाखा-विभाग है। इस में गुरुकुल कांगड़ी की निर्धारित पाठविधि ही पढ़ाई जाती है। चतुर्थ श्रेणी पास करने के पश्चात् ब्रह्मचारी को गुरुकुल कांगड़ी में भेजा जा सकता है, अन्यथा आगे यहीं पर उपदेशक विभाग की पढ़ाई प्रारम्भ हो जाती है जिस में उपदेशक विद्यालय की पाठविधि के अतिरिक्त आंगलभाषा, गणित, इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र तथा संस्कृत के बहुत से उपयोगी विषय भी पढ़ाये जाते हैं। यह उपदेशक विभाग संवत् १९७९ वि० में स्थापित किया गया था। इस समय उपदेशक विभाग में, सिद्धान्तशिरोमणि के द्वितीय वर्ष तक की पढ़ाई हो रही है, सिद्धान्त वाचस्पति का भी प्रबन्ध करलिया गया है। उपदेशक विभाग और शाखा विभाग दोनों को मिला कर इस समय कुल ११ श्रेणियाँ हैं, और ५० विद्यार्थी तथा ८ अध्यापक हैं।

इस गुरुकुल में गुरुकुल काङ्गड़ी के नियमानुसार ही सब कार्य होते हैं। ६ से ९ वर्ष तक बालक प्रविष्ट होते हैं, विशेषावस्था में १० वर्ष तक के भी ले लिये जाते हैं। शिक्षा, निवास, चिकित्सा तथा प्रबन्धादि सब मुफ़ होते है। ब्रह्मचर्य्य-पालन के अन्य सब नियम पालन करवाये जाते हैं। यहां किस परिश्रम से शिक्षा दी जाती है, गुरुकुल कांगड़ी के परीक्षक इस की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हैं। इस वर्ष परीक्षा में १०० प्रतिशतक विद्यार्थी पास हुए। ब्रह्मचारी व्रतपाल ने ९७ प्रतिशतक नम्बर लिये तथा दूसरे नम्बर में रहने वाले ब्र० विद्यापाल ने ९३ प्रतिशतक नम्बर प्राप्त किये। ब्रह्मचारी व्रतपाल को गुरुकुल मे प्रथम रहने के कारण "श्रद्धानन्द स्वर्णपदक" दिया गया।

गुरुकुल के ब्रह्मचारियों की दो सभायें है, जिन मे वे व्याख्यान निबन्ध तथा कवितादि का अभ्यास किया करते है। एक "वाग्वर्धिनी सभा" जिस के कार्य हिन्दी भाषा मे सम्पादित होते है, तथा एक "विद्या विनोदिनी सभा" जिसके कार्य संस्कृत भाषा मे होते है। ब्रह्मचारी सचित्र मासिक पत्र भी निकालते है जिसका सम्पादक ब्र० सत्यपाल है। अभी यह हस्तलिखित निकलता है, किन्तु कई सज्जनों ने उसकी उपादेयता का अनुभव कर इसको छाप कर निकालने के लिये आग्रह किया है, इसके लिये प्रबन्ध किया जा रहा है। ब्रह्मचारियों का एक संस्कृत मासिक पत्र "भूषण" नामसे निकालने का भी विचार है।

इस गुरुकुल की जायदाद लगभग ४००००) चालीस हज़ार रुपये की है। इस का वार्षिक व्यय लगभग १००००) रु० है। शुल्क कम होने के कारण इस का अधिकांश दान रूप में जनता से इकट्ठा किया जाता है। आर्य जनता से प्रार्थना है कि वह इस नई फूलती हुई संस्था की ओर विशेष ध्यान दें।

मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल रायकोट

(५)

शाखा-गुरुकुल सूपा

गुजरात निवासियों की चिरकाल से प्रबल इच्छा थी कि विश्वविख्यात "गुरुकुल काँगड़ी" की एक शाखा गुजरात प्रान्त में भी खोली जावे। वे सोचते थे कि महर्षि दयानन्द की जन्मभूमि होने का जिस देश (काठियावाड़ गुजरात) को अभिमान है उसमें उन की स्मारक स्वरूप कोई भी संस्था नहीं है। अपरञ्च-गुजरात से गुरुकुल काँगड़ी में प्रविष्ट होने वाले ब्रह्मचारीगण पर्याप्त संख्या में जाते थे और यहाँ के निवासी धन द्वारा भी प्रतिवर्ष गुरुकुल काँगड़ी की विशेष सहायता करते थे। धीरे २ यह चिन्ता यहाँ के निवासियों में विशेष रूप से जागने लगी।

इसी बीच में गुरुकुल काँगड़ी के सुयोग्य स्नातक श्रीयुत पं. ईश्वरदत्त जी विद्यालंकार (वैदिक मिशनरी) जो विदेश से लौट कर आये थे गुजरात में गुरुकुल काँगड़ी की शाखा खोलने का विचार करने लगे। बस, गुजराती आर्य भाइयों का उत्साह दूना होगया। फल स्वरूप गुजरात गुरुकुल सभा का संगठन किया गया, और यह नियम बनाया गया कि जो महानुभाव १०००) एक हजार रुपया दान दें वह इसके सभासद् समझे जावें।

श्रीयुत पंडित ईश्वरदत्त जी विद्यालङ्कार (वैदिक मिशनरी), श्रीदयालजी लल्लूभाई और श्रीयुत भीणाभाई देवाभाई के अनथक परिश्रम और उत्साह से पचास सभासद् बन गये, और पचास हज़ार रुपये गुरुकुल की स्थापना के लिये नक़द प्राप्त होगये। तब १९२३ ईस्वी को गुजरात गुरुकुल सभा की स्थापना हुई।

स्थापना—अब गुरुकुल की स्थापना किस जगह की जाय। बहुत विचारने के पश्चात् यह निर्णय किया गया कि जगत्प्रसिद्ध "बारडोली" तहसील में पूर्णानदी के रम्य किनारे पर गुरुकुल की स्थापना की जाय। तदनुसार पूर्णानदी के रम्य तट पर गुरुकुलों के प्रवर्त्तक परम पूज्य श्रद्धेय श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी सन्यासी के मङ्गलमय पवित्र कर-कमलों से माघ शुक्ला त्रयोदशी १७८० सम्वत् तदनुसार १८ फरवरी १७२४ ई० को महर्षि-दयानन्द सरस्वती की जन्म शताब्दी के स्मारक में गुरुकुल कांगड़ी के शाखा रूप इस गुरुकुल की स्थापना हुई। "सूपा" ग्राम के निकट होने के कारण इस गुरुकुल का नाम "गुरुकुल सूपा" रखा गया। प्रारम्भ में २८ ब्रह्मचारी प्रविष्ट किए गए। प्रवेशार्थ प्रार्थनापत्र तो १०० के लगभग आए थे, परन्तु निवास स्थान की कमी के कारण थोड़े ही ब्रह्मचारी प्रविष्ट किए गए। यह बात भी गुजरात निवासियों

का गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के साथ प्रगाढ़ प्रेम प्रदर्शन करनी है।

गुरुकुल सूपा का चतुर्थ वर्ष प्रारम्भ हो चुका है। चार श्रेणियों में मिला कर लगभग ६० ब्रह्मचारी हैं। सभा का नये वर्ष का चुनाव हो चुका है। और गुरुकुल का सारा प्रबन्ध एक योग्य और उत्साही आर्य श्रीयुत चतुरभाई बाबर भाई पटेल बी० काम को सौंपा है। शिक्षण विभाग में भी अच्छे २ कार्यकर्त्ताओं की नियुक्ति हो चुकी है।

प्रारम्भ से ही कई आर्य सज्जन, तन, मन और धन से इस गुरुकुल का सेवा करते आये हैं, जिनमें चिखलपुर निवासी श्रीयुत भाणाभाई देवाभाई और माणेकपुर निवासी श्रीयुत चाह्या-भाई नरसिंह के नाम विशेष उल्लेख-नीय हैं। बाजीपुरा निवासी आर्य्य दानवीर श्रीयुत भक्तिभाई दुर्लभभाई जी की यह संस्था हमेशा के लिए ऋणी रहेगी क्योंकि आप के हार्दिक प्रेम से गुरुकुल सूपा को २२५ बीघा भूमि दान मिली थी। भक्तिभाई-वैदिक शिक्षण-ट्रस्ट के नाम से एक ट्रस्ट भी बन चुका है।

अल्प समयमें ही गुरुकुल ने पर्याप्त उन्नति की है गुजरात-गुरुकुल-सभा के पास अपनी संस्था के लिए निम्न-लिखित भूमि मकान आदि हैं:—

गुरुकुल भूमि २६ बीघा	रु० ८०००)
आश्रम के पांच कमरे और कार्यालय········	रु० २००००)
भोजनालय और परिवार गृह ············	रु० ३५००)
स्नानागार और दो कूप ·· ···············	रु० ३०००)

इन के अतिरिक्त अन्य साधनों को जोड़ कर कुल जायदाद लगभग ४००००) की है। इस के सिवाय बैंक में स्थिर कोष के रूप में २००००) जमा है। गुजरात में गुरुकुल शिक्षा और धर्म-प्रचार की कमी को देख कर इस का भी गु० गु० सभा शीघ्र प्रबन्ध करने का यत्न कर रही है। धर्मानुरागी और गुरुकुल-शिक्षा प्रेमी दानी महानुभाव इस ओर अपनी दृष्टि करके संस्था की उत्तरोत्तर उन्नति में सहायता देकर श्रेय के भागी बनेंगे।

मंत्री गुजरात–गुरुकुल–सभा

(६)

शाखा-गुरुकुल झज्झर

श्री पण्डित विश्वम्भरनाथ जी ने अफ्रीका से लौटने पर, गुरुकुल कांगड़ी की एक शाखा झज्झर खोलने का संकल्प किया। कुछ आर्य भाइयों से मिलकर रुपया एकत्रित कर शाखा खोलने की आज्ञा आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब से ले ली। कार्य प्रारम्भ होते ही अकस्मात् चिन्ताओं के कारण उन्हें सदमा पहुंचा और कार्य बन्द हो गया फिर स्वामी परमानन्द जी ने

गुरुकुल रायकोट के ब्रह्मचारी तथा अध्यापकगण

पं० ब्रह्मानन्द जी से मिलकर इस गुरुकुल को १९८१ वि० से प्रारम्भ किया। इसके पास १३५ बीघे भूमि है, और बीच में एक पक्का कूप है। १५००) के पोस्ट आफिस में कैश सार्टिफ़िकेट हैं, और लगभग ८०००) पञ्जाब नेशनल बैङ्क में गुरुकुल कांगड़ी की मार्फत जमा हैं। इस समय इस शाखा में २५ ब्रह्मचारी और दो श्रेणियां हैं।

---

(७)

कन्या-गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

गुरुकुल काँगड़ी की स्थापना के समय उसकी स्वामिनी सभा आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने जो गुरुकुल के नियम बनाए थे, उस में गुरुकुल की परिभाषा करते हुए लिखा हुआ है कि गुरुकुल उस वैदिक शिक्षणालय का नाम है जिसमें वे बालक वा बालिकायें, जिनका यथोचित वेदारम्भ संस्कार हो चुका हो, शिक्षा और विद्या प्राप्त करें। और, इसके नोट में उल्लिखित है कि कन्याओं के लिए जब सम्भव होगा पृथक् गुरुकुल स्थापित किया जावेगा। महात्मा मुन्शीराम जी (स्वामी श्रद्धानन्द जी) प्रारम्भ से ही समय २ पर व्याख्यानों और लेखों द्वारा आन्दोलन करते रहे और आर्यजनता से जोरदार शब्दों में अपील करते रहे कि वह शीघ्र कन्या गुरुकुल की स्थापना में भी सहायक हों, परन्तु कुछ परिणाम न निकला। प्रभु की प्रेरणा से दानवीर स्वर्गीय सेठ रग्घूमल जी इस पवित्र कार्य के लिए सहायक के तौर पर आगे बढ़े। उन्होंने कन्या गुरुकुल के लिए एक लाख रुपया पहले और फिर प्रतिमास ५००) देने का संकल्प किया।

इसी महती सहायता के आधार पर आर्यप्रतिनिधि सभा पञ्जाब ने २३ कार्तिक १९८० वि० [८ नवम्बर १९२ . ईस्वी] को दीपावली के शुभ दिन देहली में कन्या-गुरुकुल की स्थापना की। प्रारम्भिक वर्ष में ही ८५ कन्यायें प्रविष्ट हुईं और इस समय १२५ ब्रह्मचारिणियें हैं जो सात श्रेणियों में विभक्त हैं। इस का सब प्रबन्ध गुरुकुल कांगड़ी की तरह आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब के ही आधीन है। इस के प्रबन्धाध्यक्ष गुरुकुल कांगड़ी के मुख्याधिष्ठाता और शिक्षाध्यक्ष आचार्य हैं। इस समय इसकी आचार्या श्रीमती विद्यावती जी सेठ बी. ए. हैं। कन्या-गुरुकुल के अन्दर काम करने वाली अध्यापिकायें आदि सब स्त्रियें ही हैं, और बाहिर के प्रबन्ध के लिए पुरुष हैं।

यह कन्या-गुरुकुल पहला है और एक ही है। इस की अभी तक किसी स्थान पर न स्थिर इमारतें बनी हैं, और न कोई अपना स्थान है। अभीतक किराये के मकानों पर ही गुजारा हो रहा है, यह बड़े दुःख की बात है। आर्य-जाति को इसकी ओर ध्यान देना चाहिए, और शीघ्र इसको स्थिर रूप मे लाना चाहिए।

गुरुकुल में प्रविष्ट होते हुवे पुत्र को
पिता का उपदेश

(१)

आज से तू सूत्रधारी ब्रह्मचारी बन गया,
पालना तीखे व्रतों का पुत्र ! मन में ठन गया;
पुत्र ! विद्यापीठ तुझ को आज अनमिल मिल गया,
द्वार सच्चे ज्ञान और आचार का अब खुल गया ॥

(२)

आज से पच्चीसवें तक व्रत यही धारण करो,
वीर्य्य-रक्षा और विद्या का पठन पाठन करो;
आज से आचार्य्य के आधीन करता हूं तुम्हें,
एक दो ही बार मेरा मेल होगा वर्ष में ॥

(३)

जानते थे तुम मुझे ही जन्म-दाता आज तक,
सत्य, मैंने ही किया था देह-पोषण आज तक;
पर, तुम्हारा दूसरा यह आज विद्या-जन्म है,
पुत्र ! यह उस जन्म का दाता पिता आचार्य है ॥

(४)

पुत्र ! जब तक देह के पोषण भरण का भार था,
बस तभी तक ही पिता का पुत्र पै अधिकार था;
सौंपता हूं आज सादर मैं तुम्हें आचार्य को,
पास जिस के पावनी शिक्षा-सुधा को पा सको ॥

(५)

घर इसी आचार्य्य-कुल को पुत्र ! अपना मानलो,
आज से आचार्य्य-कुल को अपना पिता-सम जान लो,

भारती देवी तुम्हारी आज माता हो गई,
बन्धुता यह पुत्र ! सारी अब नयी ही हो गई ॥

(६)

ब्रह्मचारी जो तुम्हें बैठे यहां हैं दीखते,
ये इसी कुल में गुरु से वेद-विद्या सीखते;
आज से सब धर्मभाई ये तुम्हारे बन गये,
पुत्र ! आगे से सुनो, अब तुम इन्हीं के हो गये ॥

(७)

बैठना उठना इन्हीं के साथ होगा सर्वदा,
भोजनाच्छादन मिलेगा साथ ही इन के सदा;
दुःख सुख में अब इन्हीं के दुःखसुख निज मानना,
स्नेह से इन बन्धुओं के साथ रहना, देखना ॥

(८)

पुत्र ! शोकातुर न होना याद कर घर के भले,
ये नये बन्धू तुझे अपने लगावेंगे गले;
शील शिक्षा के लिये रहना ज़रूरी है यहां,
उन्नती पूरी तुम्हारी हो नहीं सक्ती वहां ॥

(९)

वायु जल था हानिकारी पुत्र ! रहते थे जहां,
पुष्प-सौरभ से भरी पावन पवन चलती यहां;
पर्वतों की रम्य हरियाली मनोहर थी कहां ?
क्या विनिर्मल जान्हवी की शीत धारा थी वहां ?

(१०)

द्वेष की सत्ता नहीं, पर, प्रेम का संचार है,
दुर्गुणों के स्थान में निर्व्याज सत्याचार है;
दिव्यशोभा का यहां चारों दिशा विस्तार है,
पुत्र ! पहिले से निराला ही यहां संसार है ॥

(११)

शील का आगार, विद्या का यहां आवास है,
ज्ञान की चर्चा निरन्तर, शास्त्र का अभ्यास है;
द्वार रत्नों की निरामय खान का मानो मिला,
रत्नसंग्रह कर सको जितना, करो उतना खुला ॥

(१२)

पुत्र ! कैसे हों नियम इस दिव्य विद्यावास के,
बर्तना वैसे, न कोई दोष जिस से दे सके,
मानना आदेश होगा सर्वदा आचार्य का,
कौन शासन, आप आज्ञा पालने बिन कर सका ? ॥

(१३)

वेश सादा, और सात्विक यान पानाहार है,
सादगी ही ज्ञानियों को शोभता शृङ्गार है;
कष्ट को झेलो, यही सच्चे बलों का धाम है,
पुत्र ! तप बिना मिलता कहां आराम है ॥

(१४)

लाड़ के ही साथ पाला था तुम्हें हमने वहां
दोष करने पर परन्तू दण्ड भी होगा यहां;
आदि में शासन गुरु का यद्यपि लगता बुरा,
पर वही परिणाम में देखा गया अमृत भरा ॥

(१५)

लोभ मोह क्रोध आदि दुर्गणों को छोड़ दो,
शील की रक्षा करो, अज्ञान मुद्रा तोड़ दो;
सत्य का आधार लो, मिथ्या कभी करना नहीं,
पाप से इस भूमि को दूषित कभी करना नहीं ॥

(१६)

खेलने को जो समय मिलता यहां थोड़ा नहीं,
चित्त-रञ्जन के लिये सामान का तोड़ा नहीं;
पुत्र ! केवल खेल का पर अब जमाना होगया,
खेल के अब साथ विद्या का समय भी आगया ॥

(१७)

ब्रह्मचर्याचार ही सब शक्ति का आधार है,
नींव है यह आश्रमों की, मृत्यु का संहार है;
ऐहिकामुष्मिक सुखों का पुत्र ! सच्चा द्वार है,
शास्त्र में विख्यात इस की कीर्त्ति अपरम्पार है ॥

(१८)

अन्त में मेरा यही सच्चा तुम्हें उपदेश है,
पालना व्रत को यथाशक्ती, यही आदेश है;
पुत्र ! आए हाथ अवसर को वृथा खोना नहीं,
बन्धुओं की आश सारी को वृथा करना नहीं ॥

(१९)

देवगण जो यज्ञ शाला में उपस्थित हैं यहां,
सामने उन के प्रतिज्ञा आज जो को है महां,
पालने में ध्यान देना पुत्र ! उस के सर्वदा,
दीनबन्धू स्नेहसिन्धू साथ देंगे वे सदा ॥

(श्रीकण्ठ)

महात्मा गुरुकुल और मिस्टर कालेज की बातचीत

(लेखक— श्रीयुत श्रीपादराव सातवलेकर जी)

एक समय महात्मा गुरुकुल जी महाराज अन्य भूमण्डलों पर अपना कार्य समाप्त करके हमारी भूमि पर पुनः सञ्चार करने के लिए यहाँ पधारे। जब प्राचीन आर्षकाल में म० गुरुकुल जी अपने विद्या फैलाने का पवित्र कार्य किया करते थे, उस समय आश्रम निवासी ब्रह्मचारियों के वेदघोष से कानन गूंजा करते थे। परन्तु अब वह समय नहीं रहा। इस समय गुरुकुलों का स्थान कालिजों ने ले लिया है, जिन्होंने वनों की खुली पवित्र वायु को छोड़कर नगरों की गन्दी वायु में निवास करने को अधिक पसन्द किया है। यह देख कर म० गुरुकुल जी अत्यन्त दुःखित हुए। वनों से आगे बढ़कर जब उनकी दृष्टि नगरों के लोगों पर पड़ी तो बड़ा ही आश्चर्य हुआ। वे सोचने लगे कि क्या ये लोग उन्हीं आर्यों की सन्तान हैं, जो इतने हृष्ट पुष्ट और बलिष्ठ होते थे। इन लोगों के नये रंग ढंग, विचित्र बोली और विचित्र पोशाक को देखकर उन्हें और भी चकित होना पड़ा। पूछताछ करने पर म० गुरुकुल जी को पता लगा कि यह सब नयी रोशनी का प्रभाव है, जिसके ठेकेदार मि० कालिज का आजकल इस देश में बड़ा प्रभुत्व है। मि० कालिज का निवास स्थान पूछते हुए म० गुरुकुल अंधेराबाद पहुंचे। वहाँ पहुंच कर म० गुरुकुल, मि० कालिज से मिले और उनके मध्य में जो बातचीत हुई, उसे हम यहाँ प्रकाशित करते हैं:-

महात्मा गुरुकुल— नमस्ते, महाशय !

मिस्टर कालिज— गुड मार्निङ्ग ! तुम कौन हो ? तुम जंगली लोगों का यहाँ क्या काम है ?

म० गुरुकुल— आप नगरवासी लोगों की सेवा के लिए हम उपस्थित हुए हैं।

मि० कालिज— तुम लोगों का यहाँ कुछ काम नहीं है। हमारी सिटी लाइफ् में तुम क्या कर सकते हो ? यह हमारी युनिवर्सिटी है, यह लायब्रेरी, यह टौन हाल, इत्यादि कई इन्स्टिट्यूशन्स हमने खोल रखे हैं, यहाँ जंगली लोगों का क्या काम है ?

म० गुरुकुल— ठीक है महाशय ; यह तो सब कुछ अच्छा है, पर यह तो बताइए कि आपने जो जो कार्य यहाँ किये हैं, उनसे लोगों की आयु और आरोग्यता बढ़ी है या घटी है ?

मि० कालिज— आयु के साथ हमारा क्या कनेक्शन है ? तुम ऐसे प्रश्न पूछकर हमारा टाइम क्यों खराब करते हो ? गुड फार नथिंग फैलो !

म० गुरुकुल— यदि आयु और आरोग्यता के साथ तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं तो तुम्हारा किसके साथ सम्बन्ध है ?

मि० कालिज— हमारा सिविलाइज़ेशन के साथ सम्बन्ध है ; लोगों को हम सिटिज़न बनाना चाहते हैं ।

म० गुरुकुल— महाशय जी ! क्षमा कीजिए, शताब्दियों तक पूर्वकाल में मैं यहाँ कार्य करता रहा था और उस समय हमने भी लोगों को नागरिक बनाया था । परन्तु उस समय लोगों की आयु, आरोग्यता, तेजस्विता आदि बातों में ऐसी अवनति न थी । लोग प्रायः पूर्णायुषी होते थे । अनेक शास्त्रों में प्रावीण्य संपादन करते हुए भी आरोग्य-सम्पन्न रहते थे । परन्तु इस तुम्हारी नयी प्रणाली से इन आवश्यक बातों में अवनति दीखती है ।

मि० कालिज— नान्सेन्स, ऐसी बातें करने के लिए मेरे पास टाइम नहीं है, अब मुझे क्लब में जाना है ।

म० गुरुकुल— महाशय जी ! आपका भी तो चेहरा सिकुड़ गया है ! आप थोड़ा सा हमारे साथ भ्रमण करेंगे तो अच्छा होगा । कृपा करके आइए, मेरे साथ इस पहाड़ पर चलिए, वहाँ इसी विषय में बातें करेंगे ।

मि० कालिज— मेरी हैल्थ बहुत वर्षों से बिगड़ी हुई है, देर से डिस्पेप्सिया सता रहा है, परन्तु क्या किया जावे अपनी ड्यूटी तो करनी ही पड़ती है । अब समय होचुका है, आज डा० 'किक डैथ' साहिब का फ़िजिकल कल्चर पर हमारे 'बिग व्हेल क्लब' में लेक्चर होगा, वहाँ मुझे प्रिज़ाइड करना है , इसलिए अब मैं तुम्हारे साथ घूमने नहीं जा सकता ।

म० गुरुकुल— आप अपने स्वास्थ्य की रक्षा करना नहीं जानते तो औरों को वहाँ जाकर आप क्या उपदेश देंगे ?

मि० कालेज— तुम मेरा इन्सल्ट करते हो, तुम ज्यादा बकवाद करोगे तो इस पुलिस के हवाले तुम को कर दूँगा।

इतनी बातचीत होने पर 'बिग व्हेल क्लब' का चपरासी मोहम्मद खाँ आ पहुंचा और उसने मि० कालिज को सूचना दी कि आज डाक्टर साहिब का लेक्चर नहीं हो सकता, क्योंकि सर्द हवा के कारण उनको जुकाम होगया है।

म० गुरुकुल— महाशय जी! देखिए, आपकी प्रणाली से स्वास्थ्य की यह दुर्दशा हुई है।

मि० कालिज— तो क्या तुम्हारे सिस्टम से ठीक हो सकती है?

म० गुरुकुल— अवश्य ठीक होगी। आपने जो बिगाड़ किया है, उस के सुधार का हम पूरा प्रयत्न करेंगे। परन्तु कृपया यह तो बताइए कि आप अपनी भाषा में 'इन्सल्ट' 'सिस्टम' आदि शब्दों को मिलाकर उसे खिचड़ी भाषा क्यों बनाते हैं? क्या आपकी भाषा में इनके लिए शब्द नहीं हैं?

मि० कालिज— [कुछ लज्जित होकर] क्या करें भाई! आज कल का यही फैशन समझा जाता है। अच्छा आगे से शुद्ध भाषा बोलने का प्रयत्न करूँगा।

म० गुरुकुल— अच्छा, तो हमारे साथ पहाड़ पर घूमने चलिएगा?

मि० कालिज— चलो, आज तुम्हारे साथ ही घूमने के लिए आवेंगे। परन्तु कमज़ोरी के कारण मैं बहुत दूर तक नहीं जा सकूंगा।

म० गुरुकुल— सुनिए, महाशय जी! शहर की हवा बहुत बिगड़ी हुई होती है, परन्तु वन की हवा शुद्ध और पवित्र होती है। इसलिए मेरा कथन यह है कि सब विद्यार्थियों को न्यून से न्यून २५ वर्ष की आयु तक नगरों से दूर, वन की खुली वायु में रख कर विद्याध्ययन करवाना चाहिए।

मि० कालिज— रहना तो सब लोगों ने शहरों में ही है, फिर विद्यार्थियों को पहले से ही शहरों में क्यों न रखा जावे! इसमें हानि क्या है?

म० गुरुकुल— इसमें बड़ी भारी हानि है। देखिए, २५ वर्ष तक शरीर की वृद्धि का समय है, यदि उस समय गन्दी वायु और बुरे प्रभावों के कारण उसकी वृद्धि में रुकावट पड़ेगी तो जन्मभर के लिये स्वास्थ्य बिगड़ जावेगा।
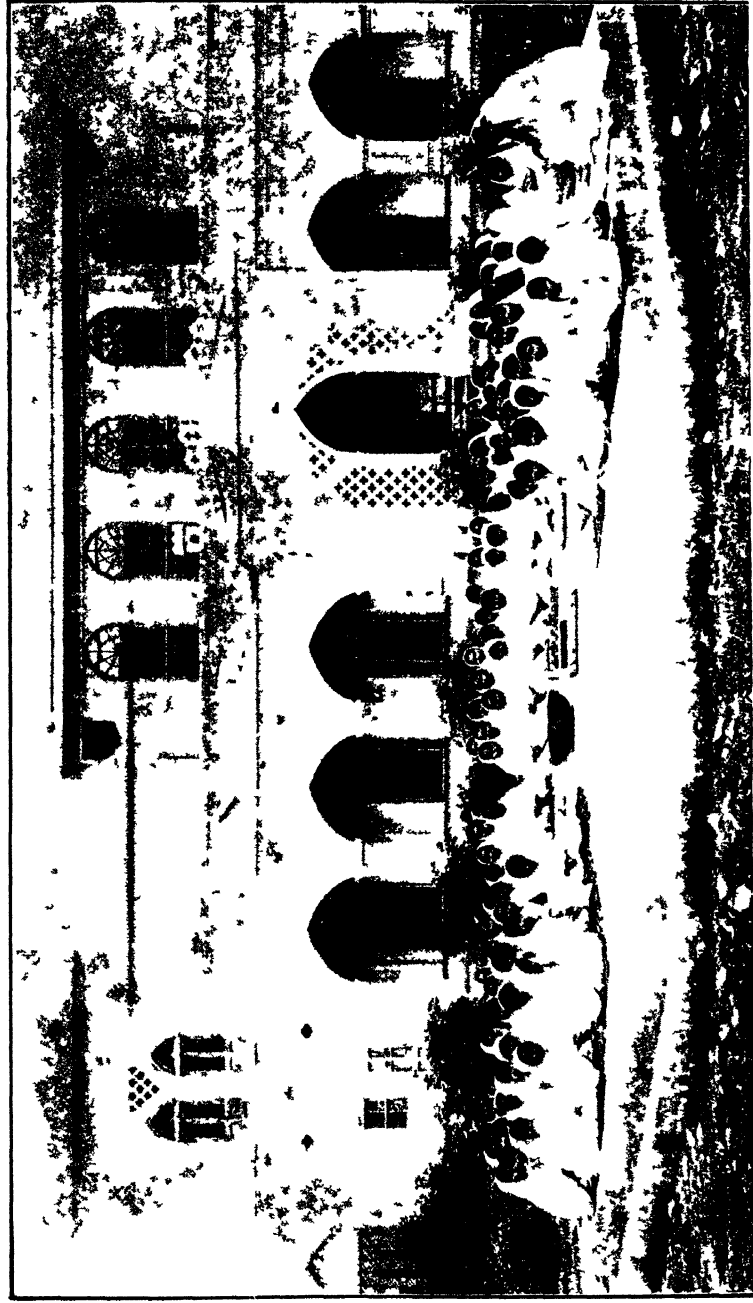
कन्या गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ की ब्रह्मचारिणियें ।

परन्तु यदि पूरी शारीरिक उन्नति के पीछे विद्यार्थी शहर मे रहेंगे तो कोई बडी हानि न होगी।

मि० कालिज— इस प्रकार तो माता पिताओं से लड़के दूर हो जावेंगे ?

म० गुरुकुल— अवश्य होंगे, और अवश्य होने चाहियें। आठ वर्ष की आयु तक लड़के माता पिता के पास रहें, तत्पश्चात् वे राष्ट्र के अतिथि बनाए जावेंगे। पच्चीस वर्ष तक विद्यार्थियों की रक्षा करना, उनके माता पिता का काम नहीं प्रत्युत राष्ट्र का कर्तव्य है।

मि० कालिज— आप क्या बोल रहे हैं, हमारे ध्यान में नहीं आता। विद्यार्थी लोग राष्ट्र के अतिथि कैसे हो सकते हैं ?

म० गुरुकुल— महाशय जी ! ध्यान दीजिए। हमने तो आयुष्य के चार भाग किए हैं। मनुष्य की आयु १०० वर्षों से १२० तक······

मि० कालिज— महात्मा जी ! आप कब की बात करते हैं ? इस समय तो ४० वर्ष तक ज़िन्दा रहना भी कठिन होता है।

म० गुरुकुल— यह मैं जानता हूं। हमारी प्राचीन व्यवस्था टूट जाने से ही तो आयु, शक्ति और तेजस्विता घटने लगी है। यदि हमारी प्रणाली पुनः चलेगी तो बराबर मनुष्य पूर्ण आयु वाले होंगे। अस्तु 'शतायुर्वै पुरुषः' यह साधारण मान है। चार विभाग करके पहले विभाग में ब्रह्मचर्य, दूसरे विभाग में गृहस्थ, तीसरे में वानप्रस्थ और चौथे में सन्यास—ये चार आश्रम निश्चित किए गये हैं। गृहस्थाश्रमी लोग ही नागरिक होते हैं। ब्रह्मचारी लोग वन में रह कर विद्याध्ययन करते हैं। वानप्रस्थी लोग वन में रह कर ब्रह्मचारियों को पढ़ाते हैं। इन दोनों आश्रमवासियों की पालना राष्ट्र का काम है। ये लोग राष्ट्र के अतिथि हैं। अब रहा सन्यासाश्रम, सन्यासी लोग सब राष्ट्रों के साथ एकसा संबन्ध रखते हैं। निष्पक्षपात होकर सब के हितार्थ उपदेश करना इनका काम है।

मि० कालिज— महाराज आप तो ख़याली दुनियाँ में सञ्चार कर रहे हैं। क्या कभी ऐसी व्यवस्था हो सकती है ?

म० गुरुकुल— प्राचीन काल में आर्यावर्त में ऐसी ही व्यवस्था थी, और आप सब लोग ध्यान देंगे तो आगे भी हो सकती है। बचपन से बुढ़ापे तक शहरों में रहने से शरीर मन बुद्धि, तीनों का विकाश नहीं होता। इसके लिए आप अपना ही उदाहरण देखिए, आपका स्वास्थ्य खराब होने का यही कारण है।

मि० कालेज— जो आप कहते हैं, वह सब प्रतीत तो ठीक ही होता है। आज एक दिन शुद्ध वायु का सेवन करने से मुझे उत्साह विदित हो रहा है।

म० गुरुकुल— ऐसी शुद्ध वायु यदि विद्यार्थियों को सर्वदा मिले तो अवश्य उनका स्वास्थ्य ठीक ही रहेगा। आरोग्य ठीक रहने से विद्या भी बहुत प्राप्त हो सकती है।

मि० कालेज— गुरुजी! जो आप कहते हैं, वह सब ठीक है, मैं आज से आपका सहायक बनता हूं।

म० गुरुकुल— जो हमारा उद्देश्य है, वह आपका भी है। विद्या के प्रचार करने में हम दोनों सहमत हैं, यदि आप अपनी सब शक्ति इस ओर लगावें तो देखिए थोड़े ही काल में आरोग्यता, विद्वत्ता, तेजस्विता और सदाचार आदि गुणों का साम्राज्य सर्वत्र हो जावेगा।

मि० कालेज— मैं आज से आपका अनुगामी बनता हूं और मैं अपना तन मन धन, सब कुछ गुरुकुल-शिक्षा-प्रणाली के प्रसार में लगा दूंगा।

इतनी बात चीत होने पर दोनों आनन्द से "सहनाववतु सहनौ भुनक्तु सहवीर्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै" यह मंत्र गाने लगे। आशा है सब पाठकगण ऐसा ही निश्चय करके अपनी सन्तति को गुरुकुल में भेजेंगे।

मेरा स्वर्ग

(१)

चलो यहां से चलें वहां हम जहां क्लेश का हो न उड़ान।
पूरण सुख ही फैल रहा हो, रहता मधुर जहां मुस्क्यान॥

(२)

झूम रहीं हों जहां लतायें खिलीं बसन्तीं कलियाँ जान।
भौंरों की मीठी रागिनियां उठें प्रेम का करती गान॥
करती हो निज नवल चमेली फूलों भरी मधुर आह्वान।
हो वसन्त ऋतु आई जिस में आठों पहर महीनों जान॥

किंशुक फूले हुए जहाँ हों, सीमल के हों पेड़ महान ।
कोयल जिस के वन में छिप कर बैठी मधुर मधुर ले तान ॥ चलो०

(३)

मलयाचल की पवन चले जहँ शीतल कोमल-सौरभवान ।
यज्ञ धूम से हुआ सुगन्धित जिसका हो सारा उद्यान ॥
मृग-शावक रोमन्थ कर रहे जहां करें निर्भय विश्राम ।
पक्षी वृन्द जहाँ प्रमुदित हो गान करें जगदीश्वर नाम ॥
विस्तृत हों मैदान घास के गौएँ चरती हों बलवान ।
टपक रहा हो दूध थनों से बछड़े करते हों तब पान ॥ चलो०

(४)

"मोहन" चलो उसी उपवन में रहने दो पीछे का ध्यान ।
जहाँ उठें तूफान अनोखे आंधी दे जीवन का दान ॥
सामगान हो नित्य सबेरे कोकिल-कुल हों देते तानें ।
छोटे छोटे बालक बैठे करें जहां पर प्रभु का ध्यान ॥
जहाँ मिलें उपदेश धर्म के जीवन का नित हो कल्याण ।
विषयवासना छूटें सारी हों शरीर से भी बलवान ॥ चलो०

(५)

पापकर्म का ध्यान जहां पर कभी न आता हो सच जान ।
आंखों से मधु बरस रहा हो जहां हृदय का हो उत्थान ॥
कहीं कुटी हो बनी और कहिं बने हुए हों भवन महान ।
जँह वशिष्ठ और गौतम जैसे ऋषि रहते हों पूरन काम ॥
जहाँ क्षीर की नदियां बहतीं मीठे पकते हों पकवान ।
ले चल वहां यहां से मुझ को जल्दी हे मेरे भगवान ॥ चलो०

(६)

जहां रोग का नाम न हो और जहां न भय का हो कुछ भान ।
ओत प्रोत हो जहां सरलता, पावें छोटे भी सन्मान ॥

जहां सङ्ग हो खाना पीना नित्य जहां हो मिल कर गान।
तप हो, व्रत हो, नियमधर्म हो जहाँ सत्य का हो सन्मान॥
जहाँ स्वार्थ का नाम न हो बस सेवा होती हो निष्काम।
पैसा तक भी पास नहीं हो फिर भी हो आनन्द निकाम॥ चलो०

(७)

घण्टे का हो नियत नाद जहँ तो हो जावें पुलकित प्राण।
ऊंच नींच का भेद जहाँ से भाग गया हो लेकर जान॥
हो समानता सब में ऐसी जैसी वन में लक्ष्मण राम।
जहाँ शोक का काम न हो कुछ और न हो धन का शुभ नाम॥
जहाँ वीरपूजा नित होती सच्चे ब्राह्मण का हो मान।
सन्यासी को सीस झुकाते दीखें सारे वृद्ध जवान॥ चलो०

(८)

चोरी, ठगी, विषय लोलुपता जहाँ न पा सकतीं हों स्थान।
गायत्री का जप करता हो सबका पूरा ही कल्याण॥
कोई ब्रह्म-विचार करें जहँ, कोई नित्य चलावें बान।
कोई कृषक बने हों, सेवा कोई करते हों हर आन॥
गङ्गा की धारा, बस आकर जिसे कराती हो नित स्नान।
जहाँ न दुख का लेश, करें अब हम भी वहीं शीघ्र प्रस्थान॥ चलो०

(९)

मित्रों को भी संग ले चलें, चलें करें सत्वर प्रस्थान।
पुण्य हिमालय ऊपर है जहँ, नीचे है गङ्गा का स्थान॥
रहते जहां जगत के नामी स्वामी "श्रद्धानन्द" महान।
स्वर्गलोक के देव सदा हैं जिनका करते गुणगण गान॥
हे हृदयेश महेश्वर! अब तो दूभर लगता है यह स्थान।
वहां उड़ा कर ले चल, तेरा जो है शान्त मनोहर धाम॥ चलो०

पं० विद्याधर विद्यालंकार 'मोहन'

विद्वानों की दृष्टि में गुरुकुल

ब्रिटिश साम्राज्य के भूतपूर्व प्रधान सचिव रेम्ज़े मैग्डानल्ड - भारतीय शिक्षा में गुरुकुल एक अत्यन्त महत्त्व पूर्ण वस्तु है। १८३५ में लार्ड मैकाले ने भारतीय शिक्षा के सम्बन्ध में अपनी सम्मति लिखी थी। तब से आज तक भारतवर्ष में शिक्षा के लिये जो यत्न किये गये हैं उन में यह विद्यालय सब से अधिक गौरवयुक्त यत्न है। मैकाले को सम्मति के परिणामों से भारतवर्ष में प्रायः सब लोग असन्तुष्ट हैं, किन्तु उस असन्तोष को सिवा गुरुकुल के चलाने वालों के और किसी ने कार्य में परिणत नहीं किया।

* * * *

श्रीयुत लार्ड मेस्टन भूतपूर्व लाट साहिब युक्तप्रान्त -- इस आश्चर्यजनक मनोरञ्जक तथा उत्तेजक संस्था को देखने के लिए आना मेरे लिये बड़ा परितोष-दायक सिद्ध हुआ। यहां अपने कर्तव्य-पालन में तत्पर तपस्वियों का एक समुदाय देखने में आता है जो प्राचीन ऋषियों की प्रणाली को वर्तमान वैज्ञानिक रीति के साथ मिला कर वस्तुतः गुज़ारे मात्र पर काम कर रहे हैं। यहां के विद्यार्थी पुष्ट शरीर आज्ञाकारी, पर सच्चे राजभक्त, कार्यपरायण तथा प्रसन्न हैं, और इनका पालन पोषण अच्छी तरह किया जाता है। एक बात मैंने यहां और भी देखी है। मुझे शोक है कि जहां दौर्भाग्यवश हमारे स्कूलों और कालिजों में तीन के पीछे एक विद्यार्थी के ऐनक लगी होती है, वहां गुरुकुल में २० में एक के ऐनक लगी है। यह गुरुकुल मेरे लिए आदर्श शिक्षणालय है।

* * * *

कलकत्ता युनीवर्सिटी कमीशन के प्रधान डा० सेडलर महोदय-- आपकी संध्या की प्रार्थना इस प्रकार की सार्वभौम है कि उस में बिना किसी परिवर्तन के सब मत और सम्प्रदायों के अनुयायी हार्दिक एकता और धार्मिक भाव से शामिल हो सकते हैं।

मैं समझता हूं कि जिस शिक्षा-विधि में मातृभाषा को प्रथम और सब से पूज्य स्थान दिया गया है, वहां संभव है कि चित्त का स्वतंत्र विकास होकर मानसिक वृत्तियों तथा भावों पर प्रभुत्व प्राप्त हो और उच्च आकांक्षाओं को ओजस्वी शब्दों में प्रकट करने की योग्यता प्राप्त हो।

भारत महामंत्री के भूतपूर्व प्राइवेट सैक्रेटरी श्रीयुत किश महोदय-- प्रबन्ध के साधनों की पूर्णता, कार्यकर्ताओं की सरलता और ब्रह्मचारियों की प्रत्यक्ष प्रसन्नता से मुझ पर इतना अधिक प्रभाव डला है कि मैं उसको इन थोड़ी सी पंक्तियों में वर्णन नहीं कर सकता।

* * * *

सर्वेण्ट आफ इण्डिया सोसायटी के प्रधान श्रीयुत श्रीनिवास शास्त्री महोदय—कोई भी हिन्दु ऐसा नहीं हो सकता जिसको गुरुकुल के साथ प्रेम न हो, क्योंकि यह भिन्न २ शिक्षा विषयक हिन्दु-विचारों तथा उद्देश्यों को अपने साथ रखता है, और इसके साथ ही सनातन काल के गुरु तथा शिष्य के पवित्र सम्बन्ध को पुनर्जागृत करता है। मैं देखता हूँ कि ब्रह्मचारियों की सब आदतें सादी हैं। जो सामान ये उपयोग में लाते हैं, वह भी यदि कठोर नहीं तो सादा अवश्य है। मैं समझता हूं कि ब्रह्मचारियों की नित्यप्रति की आदतें सर्वथा नियमित हैं, और वे लगभग कठिन तपस्या के समीप २ पहुँचती हैं। इस प्रकार की अवस्थाओं में शिक्षा का सफल और कृतकृत्य होना आवश्यक ही है।

ऋषि के जीवन का एक पृष्ठ

(ले०—श्रीयुत् प्रेमचन्द बी० ए०)

यों तो श्री स्वामी श्रद्धानन्द ने देश और समाज के हितों की रक्षा के लिए अपना जीवन ही अर्पित कर दिया था, पर उन में सब से बड़ा गुण जो था वह उन की अपूर्व शालीनता थी। उन्होंने जाति सेवा के लिए जो मार्ग निश्चित किया था उस में अन्य मत वालों से मतभेद होना अनिवार्य था, लेकिन सिद्धान्तों के भेद को उन्होंने कभी अपने सौजन्य पर आधिपत्य न जमाने दिया। यही कारण है कि मुसलिम नेताओं में भी शायद ही कोई ऐसा हो जिस ने मुक्त कंठ से आप की कीर्ति का अनुमोदन न किया हो। हिन्दुओं के क़लम से अब तक आप के गुणानुवाद और शोक में हज़ारों लेख निकल चुके हैं, लेकिन एक सच्चे सहृदय मुसलिम के क़लम से इस विषय में जो लेख निकला है वैसा अब तक किसी हिन्दू ने नहीं लिखा। लेख क्या है एक भक्त की श्रद्धांजलि है, जिसके एक २ शब्द में लेखक के विशुद्ध भाव झलक रहे हैं। यह लेखक दिल्ली निवासी मि० आसफ् अली, बार-ऐट-ला हैं। आप का लेख इसी महीने के हिन्दुस्तान रिव्यू में छपा है। उस को

पढ़ने से ज्ञात होता है कि राष्ट्रवादी मुसलिमों को भी आप से कितना प्रेम था। और उस प्रेम का क्या कारण था? यही कि स्वामी जो की स्वाभाविक मृदुता, सौम्यता और शालीनता कभी उन का साथ नहीं छोड़ता थी। उनका हृदय निष्कपट था, उसमें क्षुद्रता के लिये स्थान ही न था। आप स्वामी जी के सामाजिक और धार्मिक कृत्यों का उल्लेख करने के बाद लिखते हैं—

"सन् १६१८ में जब दिल्ली में पहली वार कांग्रेस का अधिवेशन हुआ तो स्वामी जी स्वागत—कारिणी समिति के उपप्रधान चुने गए थे। मैं भी सहकारी मन्त्री था और मुझे स्वामी जी के साथ काम करने का उस समय बहुत अवसर मिला। आपकी स्नेह-मय उदारता, अपूर्व सज्जनता, नम्रता और निष्कपट मैत्री ने शीघ्र ही मुझे वशीभूत कर लिया। उन की गुरु-जन सुलभ सौम्यता और स्नेह और मेरी ओर से भक्ति और सम्मान के भावों ने हमारे बीच में एक ऐसा प्रगाढ़ सम्बन्ध उत्पन्न कर दिया जो अनेक विषयों पर हम में तात्विक विरोध होने पर भी अन्त समय तक बना रहा"।

सन १६२२ में मियाँवाली जेल में लेखक महोदय की स्वामी जी से फिर भेंट हुई, जिन की सज़ा के अब थोड़े ही दिन और बाकी रह गए थे। ज्योंही आप को मालूम हुआ कि स्वामी जी वहां हैं—"मैं उन की कोठरी की ओर बेतहाशा दौड़ पड़ा। स्वामी जी ने दोनों बाँहें फैला कर मेरा अभिवादन किया और बड़े स्नेह से मुझे गले लगाकर अपने पास बैठा लिया।"

मियाँवाली जेल में भी स्वामी जी गीता, रामायण या दर्शन पर उपदेश दिया करते थे। क़ैदियों को जिस सत्संग का शुभ अवसर और कहीं न मिल सकता वह इस जेल में हाथ आता। प्रेमियों की एक मण्डली रोज़ जमा हो जाती थी। मौलाना आसफ़ अली ने स्वामी जी से गीता रहस्य माँग कर पढा और जब कभी उन्हें कोई शंका होती स्वामी जी बड़े हर्ष से उसे समाधान कर देते थे। कभी राजनीति पर बात चल पड़ती, कभी दर्शन पर, और कभी फ़ारसी साहित्य पर। स्वामी जी फ़ारसी साहित्य के बड़े अच्छे मर्मज्ञ थे। मौलाना रूम की मसनवी से आप को बहुत प्रेम था।

मौलाना आसफ़अली का स्वास्थ्य उन दिनों कुछ अच्छा न था। शरीर में रक्त की कमी थी। चेहरा पीला पड़ गया था। स्वामी जी को उन की दशा देख कर चिन्ता हुई। वाह! कितना सच्चा वात्सल्य भाव था। खुद जेल में थे, सभी प्रकार के कष्ट सह रहे थे, पर मौलाना आसफ़ अली की यह दशा देख कर आपने उन के लिये एक दूसरी कोठरी चुन दी जिस में धूप और प्रकाश

स्वच्छन्द रूप से मिल सकता था। उन के आहार के संबंध में भी जेलर से सिफ़ारिश कर दी, जो स्वामी जी का बहुत लिहाज़ करता था। यह सद्व्यवहार था, यह सज्जनता थी, जो परिचितों को भी उन का भक्त बना देती थी।

हम आज उस उपदेश को भूले जा रहे हैं जिस का सजीव उदाहरण ऋषि श्रद्धानन्द का जीवन था। हम आज मुसलमानों को 'बरबर' कहते नहीं थकते। एक व्यक्ति की परिवर्तित मानसिक वृत्ति से उत्तेजित हो कर समस्त जाति को "वहशी" और "बरबर" और न जाने क्या क्या कह रहे हैं। पर उसी वहशी और बरबर जाति का एक व्यक्ति ऋषि का अन्त समय तक चिकित्सक था। उसी वहशी और बरबर जाति के व्यक्तियों से ऋषि की मित्रता थी। अबदुल रशीद जैसे दीवाने किस समाज, किस देश और किस जाति में नहीं हैं या नहीं थे? और अगर हमारे समाचार पत्रों का औधत्य इसी भाँति दिन दूना रात चौगुना बढ़ता रहा तो ऐसी दुर्घटनाओं की शंका भी उसी अनुपात से बढ़ती जायगी। विद्वेषात्मक भाषा और भावों का सम्पादन करके आज तक किसी धर्म सम्प्रदाय या जाति ने कीर्ति और यश नहीं पाया है और न कभी पावेगा। किसी धर्म की श्रेष्ठता उस के अनुयायियों के सदाचार, सेवा और सद्वृत्ति में है, गाली और फक्कड़ बाज़ी में नहीं। ऋषियों को कलंकित करने वाले, निग्रहहीन, उत्तरदायित्व हीन, विवेकहीन युवकों को जब हम धर्म के नाम पर लट्टू लिए देखते हैं तो यही कहना पड़ता है कि भगवन्, इस धर्म की लाज अब तुम्हारे हाथ है, अब तुम्हीं इसकी रक्षा करना। हम में खुद क्या क्या कमजोरियां हैं जिन के कारण हमारी यह दुर्गति हो रही है पहले उनका सुधार कीजिए। मुस्लिम इतिहास की जाँच परताल और मुसलिम महात्माओं की जीवन चर्या लिखने के लिए जो क्षमता, जो सहनशीलता, जो निर्पेक्षता चाहिए वह बड़े स्वाध्याय, मनन और बड़े सौहार्द्य से प्राप्त होती है।

गुरुकुल द्वारा उत्पन्न साहित्य

साहित्य की उन्नति करना गुरुकुल के उद्देश्यों में से एक है। इस अंग की पूर्ति के लिये भी गुरुकुल की ओर से प्रयत्न हुवा है। अब तक यहां से बहुत सा साहित्य प्रकाशित हो चुका है। पाठ्य पुस्तकें प्रकाशित करने की तरफ भी गुरुकुल तथा उसके स्नातकों ने ध्यान दिया है। अब तक जो पुस्तकें

प्रकाशित हुई हैं, या शीघ्र होने वाली हैं, उनको संक्षेप से वर्णन करना उपयोगी होगा।

गुरुकुल से संस्कृत व्याकरण और साहित्य विषयक अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। संस्कृत का प्रायःसारा ही कोर्स गुरुकुल से निकल चुका है। प्रारम्भिक श्रेणियों में पढ़ाई जाने वाली संस्कृत प्रवेशिका, संस्कृत पाठावलि, बालनीति कथा माला, संस्कृतांकुर, काव्यलतिका आदि पुस्तकों के सिवाय उच्च संस्कृत पुस्तकें भी गुरुकुल से प्रकाशित हुई हैं। प्राचीन संस्कृत साहित्य में शृङ्गार रस प्रधान है। इस लिये उसे निःसङ्कोच रूप से विद्यार्थियों के हाथ में नहीं दिया जा सकता था, इस कमी को पूरा करने के लिये गुरुकुल ने विशेष रूप से प्रयत्न किया है। इसी उद्देश्य को सन्मुख रख कर हितोपदेश, पञ्चतन्त्र, रघुवंश, साहित्यदर्पण आदि पुस्तकों के संशोधित संस्करण गुरुकुल ने छपाये हैं। साथ ही महाविद्यालय विभाग में पढ़ाने के लिये 'साहित्यसुधा संग्रह' तीन भाग (बिन्दु) गुरुकुल प्रकाशित कर चुका है और शेष चौथा भाग भी छपने वाला है। ऋषि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित व्याकरण की शिक्षा पद्धति को ध्यान में रख कर गुरुकुल ने अष्टाध्यायी का एक बहुत ऊँची कोटि का भाष्य प्रकाशित किया है, और एक सरल अष्टाध्यायी, महाभाष्य लिखवाया जारहा है, जो शीघ्र ही मुद्रणालय में दे दिया जावेगा। इन के सिवाय अष्टाध्यायी, महाभाष्य, मनुस्मृति, महाभारत आदि के भी गुरुकुल ने संस्करण निकाले हैं।

गुरुकुल से इतिहास, विज्ञान आदि के भी बहुत से ग्रन्थ प्रकाशित हुवे हैं। वाह्य यूनिवर्सिटियों के एफ. ए. स्टैण्डर्ड तक का उत्तम कोर्स गुरुकुल से निकल चुका है। मा० गोवर्धन जी तथा पं० महानुनि जी विद्यालंकार ने विद्यालय विभाग के लिये भौतिकी तथा रसायन शास्त्र पर ग्रन्थ लिखे हैं। और यहां के भूत पूर्व उपाध्याय प्रो० महेशचरण सिंह की 'हिन्दी केमिस्ट्री' विद्यालय विभाग के लिये विज्ञान का उत्तम ग्रन्थ है। प्रो० रामशरणदास-सक्सेना ने महाविद्यालय विभाग की दो कक्षाओं के लिये गुणात्मकविश्लेषण पर उच्च कोटि का ग्रन्थ लिखा है। यह ग्रन्थ छप चुका है। यद्यपि इन ग्रन्थों की अभी हिन्दी जगत में बिक्री बहुत कम है फिर भी प्रभूत व्यय कर के वैज्ञानिक पुस्तकें प्रकाशित करने में गुरुकुल विशेष रूप से उद्योग कर रहा है।

आचार्य रामदेव जी ने भारत के प्राचीन इतिहास पर दो प्रामाणिक ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं। हिन्दी साहित्य में इनकी बहुत कदर हुई है। पहले भाग की सात हजार प्रतियां बिक चुकी हैं और दूसरे भाग के पहले संस्करण में ३ हजार प्रतियां छपाई

गई' हैं। आचार्य रामदेव जी ने पुराणों का विशेष रूप से अनुशीलन कर के 'पुराणमत पर्यालोचन' नाम का एक अन्य ग्रन्थ भी लिखा है। गुरुकुल के भूतभूर्व उपाध्याय डा० बालकृष्ण जी ने भारतीय इतिहास पर दो पुस्तकें लिखी हैं, जो अनेक शिक्षणालयों में पाठ्यपुस्तक के रूप में रखी गई हैं। उन्हों ने अर्थशास्त्र, शासन व्यवस्था आदि विषयों पर भी अनेक पुस्तकें लिखी हैं। गुरुकुल के भूतपूर्व उपाध्याय प्रो० साठे ने विकासवाद पर एक प्रामाणिक ग्रन्थ लिखा है जो कि गुरुकुल की तरफ से प्रकाशित किया गया है। इसी तरह प्रो० सुधाकर जी ने 'मनोविज्ञान' महत्व पूर्ण ग्रन्थ लिखा है, जिस पर कि उन्हें मङ्गला प्रसाद पारितोषक मिल चुका है।

वैदिक साहित्य के अनुसन्धान के लिये भी गुरुकुल से बहुत उद्योग हुवा है। यहां के उपाध्याय प्रो० चन्द्रमणि जी विद्यालङ्कार ने निरुक्त का वेदार्थ दीपक भाष्य दो भागों में प्रकाशित किया है। यह भाष्य बहुत विद्वत्ता पूर्ण और प्रमाणिक है। इसी तरह उपाध्याय विश्वनाथ जी ने 'अथर्ववेद का स्वाध्याय' 'वैदिक जीवन' आदि अनेक प्रामाणिक ग्रन्थ लिखे हैं। आर्यसमाज के प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् पं०शिवशङ्कर जी काव्यतीर्थ गुरुकुल में बहुत समय तक अध्यापक रह चुके हैं और उनकी अनेक पुस्तकें गुरुकुल से ही प्रकाशित हुई हैं। इसी तरह पं० श्रीपाद दामोदर जी सातवलेकर का गुरुकुल से घनिष्ठ सम्बन्ध है और उनकी बहुत सी पुस्तकें गुरुकुल से ही प्रकाशित हुई हैं।

गुरुकुल के स्नातकों ने हिन्दी साहित्य की उन्नति के लिये बहुत कार्य किया है। प्रत्येक चार स्नातकों में से एक ग्रन्थ लेखक है। बहुत से लेखकों के ग्रन्थ अभी मुद्रित व प्रकाशित न हुवे हैं। यदि अप्रकाशित ग्रन्थों को भी ध्यान में रखा जावे, तो प्रत्येक तीन स्नातकों में से एक ग्रन्थ कार है। हम कुछ स्नातकों द्वारा लिखी प्रसिद्ध पुस्तकों की सूचि यहां पर देना पर्याप्त समझते हैं—

पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति—

१ नैपोलियन बोनापार्ट
२. प्रिंस बिस्मार्क
३ महावीर गेरीबाल्डी
४. स्वर्ण देश का उद्धार (नाटक)
५. आर्यसमाज का इतिहास

प्रो. डा० प्राणनाथ जी विद्यालंकार

१. राजनीति शास्त्र
२. राष्ट्रीय आय व्यय शास्त्र
३. शासन पद्धति
४. इङ्गलैण्ड का इतिहास (दो भाग)
५. भारतीय अर्थशास्त्र
६. कौटिल्य अर्थशास्त्र

प्रो० विश्वनाथ जी विद्यालङ्कार

१. वैदिक जीवन
२. अथर्ववेद का स्वाध्याय
३. यज्ञों में पशुहिंसा

प्रो० चन्द्रमणि विद्यालङ्कार
१. वेदार्थदीपक निरुक्त भाष्य (दो भाग)
२ वेदार्थ करने की विधि
३ महर्षि पतञ्जलि और तत्कालीन भारत
४. वैदिक स्वराज्य
५. जिनचरित

पं० नन्दकिशोर जी विद्यालङ्कार
१. पुनर्जन्म
२. वैदिक विवाह का आदर्श

प्रो० जयचन्द्र विद्यालङ्कार
१. जातीय शिक्षा
२. भारतीय इतिहास का भौगोलिक आधार
३ मण्डलीक काव्य

पं० जयदेव विद्यालङ्कार
१. चिकित्साकालिका (अनुदित)
२. भैषज्यरत्नावली (टीका)
३. चक्रदत्त

पं० आत्मदेव विद्यालङ्कार
१. स्वस्थवृत्त

पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार
१ पुराणमत पर्यालोचन
२. धनुर्वेद

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार
I How to Learn Hindi
2 Confidential Talks to Young-men -ब्रह्मचर्य' ।

प्रो० धर्मदत्त विद्यालंकार
१. प्राचीन भारत में स्वराज्य
२. सन्ध्या संगीत
३. गीता

पं० धर्मदेव सिद्धान्तालङ्कार
१. तुलनात्मक धर्म विचार
२. वैदिक कर्तव्य शास्त्र
३. वैदिक समाज शास्त्र

पं० सत्यदेव विद्यालङ्कार
दयानन्द दर्शन

पं० भीमसेन विद्यालङ्कार
वीरमराठे

पं० सोमदत्त विद्यालङ्कार
रूस का पुनर्जन्म

प्रो० वागीश्वर विद्यालङ्कार
साहित्य सुधा संग्रह (चार भाग)

पं० विद्याधर विद्यालङ्कार
पवित्र पापी

पं० अत्रिदेव विद्यालङ्कार
न्याटोवैद्यक

पं० महामुनि विद्यालङ्कार
दयानन्द जीवन का मनन

पं० वंशीधर जी विद्यालंकार
'मेरे फूल'

इनके सिवाय भी बहुत से स्नातकों द्वारा लिखे हुवे ग्रन्थ हैं, जो प्रकाशित हो चुके हैं। बहुत से ग्रन्थ मुद्रित हो रहे हैं, बहुत से अभी लिखे ही पड़े हैं। इस विवरण से स्नातकों द्वारा किये हुवे साहित्यिक कार्य का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

स्नातकों ने बहुत से पत्रों का सम्पादन भी किया है। दैनिक विजय, दैनिक अर्जुन, प्रणवीर, सत्यवादी, मारवाड़ी, राजस्थान केसरी, प्रभात, आर्य, आर्यकुमार, आदित्य, सद्धर्म प्रचारक, दयानन्द प्रकाश, आर्यपत्र, आर्यजीवन आदि पत्रों का सम्पादन स्नातकों द्वारा होता रहा है। अन्य भी अनेक पत्रों का सम्पादन स्नातकों द्वारा होता रहा है। अन्य भी अनेक पत्रों के सम्पादकीय विभाग में स्नातक कार्य कर रहे हैं।

रोशनी

का

भण्डार

हैसेग लैन्टर्न जर्मनी की बनी हुई
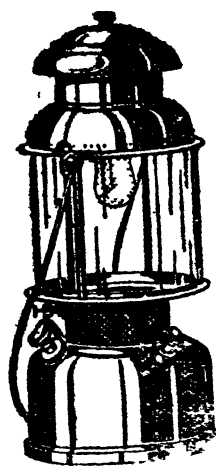
अपने समाज, सभा, सोसायटी, क्लब, व्यायाम-शाला तथा गृह को, अमरीका की बनी हुई निहायत उम्दा तथा मशहूर स्टौर्म किंग लैन्टर्न से सुशोभित कीजिए। यह लैन्टर्न अपनी चकाचौंध रोशनी के द्वारा रात को दिन कर देती है। उत्सवों की शोभा इस लैन्टर्न से दुगनी हो जाती। विवाह तथा त्यौहार आदि की खुशी के अवसर पर यह लालटेन घर की शोभा देने वाली उत्तम वस्तु है। इस लैन्टर्न से धुआँ नहीं होता। आँधी तूफ़ान तथा वर्षा में यह बुझ नहीं सकती।

इस में केरोसीन आयल या पैट्रोल इस्तेमाल किया जाता है।

(१) एक मेन्टल वाली ३५० कैण्डल पावर की स्टोर्म किंग लैन्टर्न की कीमत ३०)

(२) दो मैन्टल वाली ४८० कैण्डल पावर की स्टोर्म किंग लैन्टर्न की कीमत ३५)

(३) एक मैन्टनल वाली ३०० कैण्डल पावर की हैसेग लैन्टर्न जर्मनी की बनी हुई की० २५)

इन लालटैनों का वजन लगभग दो सेर, ऊँचाई १३ इंच, तथा चिमनी अबरक की होती है। डाक द्वारा मंगाने से एक लालटैन पर पोस्टेज खर्च अलग।

मैन्टल:—

एक मैन्टल वाली लैन्टर्न के लिए मैन्टल ३।।।) फ़ी दर्ज़न, दो मैन्टल वाली लैन्टर्न के लिये मैन्टल कीमत ३) फ़ी दर्ज़न प्राइमस स्टोव नं० १०० कीमत ९) डाक व्यय पृथक्

मिलने का पता— रविवर्मा स्टील वर्क्स अम्बाला छावनी

स्वाध्याय योग्य नई पुस्तकें

वैदिक पशुयज्ञ मीमांसा

(ले० पं० विश्वनाथ विद्यालंकार, प्रोफेसर वैदिक साहित्य, गुरुकुल कांगड़ी)

लोग प्रायः कहते हैं कि वेद, यज्ञोंमें पशुहिंसा की तथा मांसभक्षण की आज्ञा देते हैं। इस पुस्तक में इसका खण्डन किया गया है और १३ प्रकरणों में यह सिद्ध किया गया है कि मूल वेद, ब्राह्मण ग्रन्थ, गार्ग्यायण ऋषि कृत प्रणववाद, महाभारत, भागवतपुराण, और स्कन्धपुराण आदि प्रसिद्ध प्रसिद्ध ग्रन्थ इस बातमें साक्षी हैं कि वेदोंमें न तो पशुयज्ञों का ही विधान है और न मांसभक्षण का ही। साथ ही गोमेध, अश्वमेध, नरमेध, अजमेध, अविमेध और पशुमेध, इन शब्दोंके रहस्यार्थों पर भी इस पुस्तक में प्रकाश डाला गया है। मूल्य ॥।) बारह आने मात्र। डाक व्यय पृथक।

वीरमाता का उपदेश

(ले० पं० विश्वनाथ विद्यालंकार. प्रोफेसर वैदिक साहित्य गुरुकुल कांगड़ी)

महाभारत में "विदुला पुत्रानुशासन" नाम से एक वीरता पूर्ण आख्यान मशहूर है। जिस के दैनिक पाठ के लिये पूजनीय मालवीय जी ने कई बार अपने उपदेशों में हिन्दुजाति को आदेश दिया है। उसी वीरतापूर्ण आख्यान का वर्णन इस पुस्तक में बड़ी ओजस्विनी भाषा में किया गया है। भारतीय माताएं आजकल अपने पुत्रोंको कैसा उपदेश दिया करें—इसका इस पुस्तक में वर्णन किया गया है। माताओं और बहिनों के दैनिक स्वाध्याय की दृष्टि से यह पुस्तक लिखी गई है। मूल्य ।) चार आना। डाक व्यय पृथक।

पता :—

वैदिक स्वाध्याय मन्दिर

पोस्ट, गुरुकुल कांगड़ी

जि० बिजनौर।

Printed at the Graphic arts Co. 5/1 Kenderdine Lane, Calcutta.

स्वाध्याय योग्य नई पुस्तकें

वैदिक पशुयज्ञ मीमांसा

(ले० पं० विश्वनाथ विद्यालंकार, प्रोफेसर वैदिक साहित्य, गुरुकुल कांगड़ी)

लोग प्रायः कहते हैं कि वेद, यज्ञोंमें पशुहिंसा की तथा मांसभक्षण की आज्ञा देते हैं। इस पुस्तक में इसका खण्डन किया गया है और १३ प्रकरणों में यह सिद्ध किया गया है कि मूल वेद, ब्राह्मण ग्रन्थ, गार्ग्यायण ऋषि कृत प्रणववाद, महाभारत, भागवतपुराण, और स्कन्धपुराण आदि प्रसिद्ध प्रसिद्ध ग्रन्थ इस बातमें साक्षी हैं कि वेदोंमें न तो पशुयज्ञों का ही विधान है और न मांसभक्षण का ही। साथ ही गोमेध, अश्वमेध, नरमेध, अजमेध, अविमेध और पशुमेध, इन शब्दोंके रहस्यार्थों पर भी इस पुस्तक में प्रकाश डाला गया है। मूल्य ॥।) बारह आने मात्र। डाक व्यय पृथक।

वीरमाता का उपदेश

(ले० पं० विश्वनाथ विद्यालंकार, प्रोफेसर वैदिक साहित्य गुरुकुल कांगड़ी)

महाभारत में "विदुला पुत्रानुशासन" नाम से एक वीरता पूर्ण आख्यान मशहूर है। जिस के दैनिक पाठ के लिये पूजनीय मालवीय जी ने कई बार अपने उपदेशों में हिन्दुजाति को आदेश दिया है। उसी वीरतापूर्ण आख्यान का वर्णन इस पुस्तक में बड़ी ओजस्विनी भाषा में किया गया है। भारतीय माताएं आजकल अपने पुत्रोंको कैसा उपदेश दिया करें—इसका इस पुस्तक में वर्णन किया गया है। माताओं और बहिनों के दैनिक स्वाध्याय की दृष्टि से यह पुस्तक लिखी गई है। मूल्य ।) चार आना। डाक व्यय पृथक।

पता :—

वैदिक स्वाध्याय मन्दिर

पोस्ट, गुरुकुल कांगड़ी

जि० बिजनौर।

Printed at the Graphic arts Co. 5/1 Kenderdine Lane, Calcutta.

वर्ष १ * अङ्क ६ Registered No. A 1340

पौष १९८१] [दिसम्बर १९२४

अलङ्कार तथा गुरुकुल-समाचार

[स्नातक-मंडल गुरुकुल-कांगड़ी का मुख-पत्र]

मुख्य संपादक—सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

* विषय-सूचि *

विदेश से ४) एक प्रति का मू० ।=) वार्षिक मूल्य ३)

ॐ

वर्ष १ अङ्क ६ मार्गशीर्ष १९८१

अलङ्कार

तथा

गुरुकुल-समाचार

स्नातक-मंडल गुरुकुल-कांगड़ी का मुख-पत्र

ईळते त्वामवस्यवः कण्वासो वृक्तबर्हिषः
हविष्मन्तो अलंकृतः। ऋग्वेद।१।१४।५।

भ्रमर-गीत

(श्रीधर जी पाठक, प्रयाग)

हरि-पद-कंज-रस लहि भ्रमर।
मंजु हरि-पद रस लहि, भंज भ्रम भय-निकर॥

*   *   *

शोक-दुख-भव[1] दोख-दव तजि, भोग भव[2] सुख अमर।
प्रेम धन भरि धन्य मन करि, अन्य धन पर न मर।
हरि-पद-कंज रस लहि भ्रमर॥

---

१ भव = उत्पन्न। २ भव = संसार।

आर्य्यसमाज का इतिहास

[लेखक-श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति]

राजपूताने में स्वामी जी का कार्य

आज हम आर्य्यसमाज के क्षेत्र में राजपूताने की क्यारी को ऊसर ही समझे बैठे हैं। हमारे विचार को कोई अनुचित भी नहीं कह सकता, परन्तु जब ऋषि दयानन्द के जीवन के अन्तिम भाग को ध्यान से पढ़ा जाय तब प्रतीत होता है कि वह राजपूताने को ही आर्य्यसमाज का चित्तौड़ गढ़ बनाना चाहते थे। थोड़े से समय में ऋषि को कामयाबी भी अद्भुत हुई थी, परन्तु दुःख है कि राजपूताने के अभेद्य दुर्ग में जो रास्ता ऋषि ने निकाला था, उस में घुसने वाला कोई न निकला। इस का यह अभिप्राय नहीं है कि पीछे से आर्य्य समाज के कोई योग्य विद्वान् रजवाड़े में गये ही नहीं, अवश्य गये, परन्तु दुःख है कि प्रायः अर्थी हो कर गये, गुरु बन कर नहीं। राजपूताने के कुलीन वीर एक अर्थी और एक गुरु में भेद कर सकते हैं। वे जानते हैं कि गुरु के भेस में खुशामदी कैसे हुआ करते हैं। वे असली और नकली उपदेशक में भेद कर सकते हैं। याद रहे कि राजपूताने में केवल वही आचार्य्य सफलता प्राप्त कर सकता है जो उदयपुर और जोधपुर के मानी मस्तकों पर लात मार सकता है। ऋषि ने राजपूताने के शेरों की नाक में नकेल डालदी थी; ऋषि के अनुयायियों में से जो लोग राजपूताने में गुरु बनने के लिए गये, उनके दिलों में या तो आतंक था, और या मतलब था। ऐसे गुरुओं को राजपूताने में मान नहीं मिल सकता।

ऋषि दयानन्द ने राजपूताने में अनेक शिष्य बनाये थे, परन्तु वे सब से ऊँचा स्थान महाराणा प्रताप के वंशज महाराणा सज्जनसिंह को देते थे। राजपूताने में उनके पट्ट शिष्य वही थे। ऋषि की मृत्यु के लग भग १ वर्ष पीछे महाराणा सज्जनसिंह की मृत्यु हो गई। इस मृत्यु से परोपकारिणी सभा का सब से मजबूत स्तम्भ गिर गया, और राजपूताने की आर्य्यसमाजों के पाँव उखड़ गये। शाहपुरनरेश महाराजा नाहरसिंह ने महाराणा के वियोग दुःख को भुलाने का यत्न किया, और आर्य्यसमाज के कार्य्य में बहुत उत्साह दिखाया। आपके ही उद्योग से २६ मार्च १८८५ के दिन शाहपुरा में आर्य्यसमाज की स्थापना हुई।

जोधपुर राजपूताने की एक प्रसिद्ध रियासत है। राठौर राजपूतों का किसी समय गढ़ था। यह वही क्रूर भूमि है जहाँ आर्य्य समाज के प्रवर्त्तक को विष दिया गया था और जहाँ व्यभिचार और साम्प्रदायिक पक्षपात ने एका कर के अपनी जड़ उखाड़ने वाले का प्राण हरण करने का बीड़ा

उठाया था। ज्येष्ठ सम्वत् १९४० में दयानन्द का सिंहनाद जोधपुर में होने लगा। उस निर्भय प्रचार का प्रभाव जब जोधपुराधीश महाराजा श्री यशवन्तसिंह जी पर पड़ने लगा तभी घातकों की कुमन्त्रणा का साधन ब्राह्मण कुलोत्पन्न जगन्नाथ बना। जगदुद्धारक ऋषि ने तो पता लगते ही घातक को कुछ धन दे कर भगा दिया, परन्तु आर्य जनता की उठती हुई आशाओं पर वज्रपात ही हो गया। यद्यपि राज्य के बहुत से महानुभावों को ऋषि के सत्सङ्ग का सौभाग्य प्राप्त हुआ तथापि उन सब में से ऋषि के उद्देश्य को समझ कर उसका आदर केवल महाराजा श्री प्रतापसिंह जी ने ही किया। उस समय न वह ब्रिटिश नाइट थे और न ही उन्होंने G.C.S.I. का उच्च उपाधि धारण की थी। मेजर जनरल तो क्या, उस समय क्या कोई यह भी सोच सकता था कि इन्हें ब्रिटिश सेना में कोई कप्तान भी बनायगा। परन्तु बाल ब्रह्मचारी का उपदेश बिजली का सा असर कर गया और रोगी प्रतापसिंह ने वेदानुसार अपने आत्मिक गुरु से मानसिक प्रार्थना की— नोऽश्माभवतुनस्तनूः। "हमारा शरीर पत्थर के तुल्य दृढ़ हो" और वह शरीर कैसा वज्र के समान हो गया, उसे काबुल की सरहद और फ्रान्स के मैदान ही जानते हैं।

इस सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द के भावों का परिचय उन के महाराजा प्रतापसिंह जी को लिखे एक पत्र से बहुत अच्छी तरह मिलता है। ऋषि लिखते हैं:—

"श्री .... प्रतापसिंह जी आनन्दित रहो। यह पत्र बाबा साहेब को भी दृष्टिगोचर करा दीजिएगा। मुझ को इस बात का बहुत शोक होता है कि श्रीमान् जोधपुराधीश आलस्यादि में वर्तमान हैं, आप और बाबा साहेब दोनों रोगयुक्त शरीर वाले हैं।

अब कहिये! इस राज्य का, कि जिस में सोलह लाख से कुछ ऊपर मनुष्य बसते हैं, रक्षा और कल्याण का बड़ा भार आप लोग उठा रहे हैं। सुधार और बिगाड़ भी आप ही तीनों महाशयों पर निर्भर है। तथापि आप लोग अपने शरीर के आरोग्य, संरक्षण और आयु बढ़ाने के काम पर बहुत कम ध्यान देते हैं—यह कितनी बड़ी शोचनीय बात है। मैं चाहता हूँ कि आप लोग अपनी दिनचर्य्या मुझ से सुन कर सुधार लेवें जिस से मारवाड़ को क्या अपने आर्य्यावर्त देश भर का कल्याण करने में आप लोग प्रसिद्ध होवें। आप जैसे योग्य पुरुष जगत् में बहुत कम जन्मते हैं .... उत्तम पुरुष जितना अधिक जीवे उतनी ही देश की उन्नति होती है ......

ह० दयानन्द सरस्वती।

आश्विन ३, शनिवार सं० १९४० विक्र०"

महाराजा प्रतापसिंह के निजू शरीर सेवक महाशय लक्ष्मण के हृदय में वैदिक धर्म का अङ्कुर पहिले पहिल उगा। ऋषि दयानन्द के देहान्त के पश्चात् विक्रमी संवत् १९४२ में उन्होंने आर्य्य समाज स्थापन किया, परन्तु पर्य्याप्त उपस्थिति न होने के कारण ६ मास में ही उसकी समाप्ति हो गई। संवत् १९४५ में फिर स्वामी भास्करानन्द जी के उद्योग से आर्य्य समाज स्थापित

हुआ। श्री महाराजा प्रतापसिंह जी उक्त स्वामी का बड़ा आदर करते थे, इस लिये वह उक्त आर्य्य समाज के प्रधान बने, जोधपुर राज के महामन्त्री श्री पण्डित सुखदेव प्रसाद बी. ए., सी. आई. ई. मन्त्री बने और अन्य बहुत श्रीमानों ने शेष अधिकार लिए। उस समय जोधपुर की सारी प्रजा ही सभासदों की सूची में सम्मिलित समझी जाती थी और साप्ताहिक अधिवेशनों में दो सहस्र से अधिक जनों की उपस्थिति होती थी। व्याकरणाचार्य्य पण्डित ठाकुरदास, पण्डित गणेश रामचन्द्र, पण्डित अचलेश्वर आदि इसी समय उपदेशक नियत किए गए थे।

महाकवि कालिदास और विक्रमादित्य

[लेखक-श्री भवानो प्रसाद जी गुप्त]

भारतीयों में आबालवृद्धवनिता चिरकाल से परम्परापोषित यह किंवदन्ती चली आती है कि कविकुलगुरु कालिदास उज्जयिनी के शकारि वीरविक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में से एक थे। भारतवर्ष के प्रत्येक कोने में विक्रमाब्द वा विक्रम संवत् प्रचलित है जो आजकल १९८१ है। यह संवत् उनके सांसारिक व्यापार व्यवसाय और बहीखातों आदि में ही व्यवहृत नहीं है प्रत्युत यह उनके प्रतिदिन के धार्मिक कृत्यों में भी स्थान पाए हुए है। प्रत्येक वैदिकधर्मी न केवल नित्यप्रति के संकल्प में ही विक्रम संवत् का उच्चारण करता है किन्तु प्रत्येक हिन्दू बालक की जन्मपत्री में भी उसका उल्लेख होता है और इस लिए सर्वसाधारण में यह विश्वास बद्धमूल है कि कविकुलगुरु कालिदास और शकारि विक्रमादित्य १९८१ वर्ष पूर्व भारतवसुन्धरा की क्रोड में क्रीड़ा करते थे। परन्तु जब से योरपीय इतिहासशोधकों और उनके भारतीय अनुयायियों का भारत के ऐतिहासिक क्षेत्र में पदार्पण हुआ है उन्हों ने इस चिररूढ़ विश्वास में एक नवीन ही संशय खड़ा कर दिया है। उनकी नवनवोन्मेषशालिनी ऐतिहासिक प्रतिभा ने विक्रम और कालिदास के विषय में एक नवीन ही तत्त्व की उद्भावना की है कि वस्तुतः प्रभुयीशु से पूर्व प्रथम शताब्दी में भारतभूमि पर कोई कालिदास वा विक्रम विद्यमान न थे और उस समय भारतवर्ष में संस्कृतसाहित्य की ऐसी उन्नति ही न थी कि कालिदास से महाकवि जन्म लेकर संस्कृत के ऐसे उत्तम काव्य लिख सकते। उनके नवाविष्कार के अनुसार महाकवि कालिदास अब से लगभग चौदहसौ वर्ष पूर्व ईसा की छठी शताब्दी में हुए थे और वे गुप्तवंशीय द्वितीय चन्द्रगुप्त के आश्रय में रहते थे। अपने इस पक्ष की पुष्टि में वे कालिदास के रघुवंश में अनेक स्थानों पर आए हुए गुप्त शब्द (यथा "स्ववीर्यगुप्ता हि मनोः प्रसूतिः" "स गुप्तमूलप्रत्यन्तः शुद्धपार्ष्णिरयान्वितः" इत्यादि) को प्रस्तुत करते हैं। कई योरपीय इतिहासशोधकों की सम्मति में कालिदास चन्द्रगुप्त के आश्रय में न रह कर कुमारगुप्त के आश्रय में रहते थे और उनकी सम्मति के पोषक प्रमाण भी रघुवंश में ही "आकुमारकथोद्घातं शालिगोप्यो जगुर्यशः" "कुमारभृत्याकुशलैरनुष्ठिते भिषग्भिराप्तैरथ गर्भभर्मणि" उपलब्ध हैं। कई योरपीय बुद्धिविशारदों का निश्चय है कि कालिदास कहरूर के युद्ध में हूणों को पराजित करने वाले उज्जयिनीराज यशोधर्मन् की सभा की शोभा बढ़ाते थे। विक्रम संवत् के विषय में इन विपश्चित् विद्वानों का यह विचार है कि वस्तुतः उज्जयिनीनरेश विक्रम ने कोई संवत् कभी चलाया ही न था किन्तु मालवगणों का एक

संवत् पूर्व से चला आता था उस को ही छठी शताब्दी के गुप्तवंशीय विक्रमोपाधिधारी चन्द्रगुप्त ने विक्रम संवत् का नाम देकर अपने संवत् के नाम से प्रचलित कर दिया। चाहे भारतीय साधारण बुद्धि इस बात को स्वीकार न कर सके कि अब साधारणनरेश भी अपना नवीन संवत् चलाने का उद्योग करते रहे हैं और किसी भी संवत् प्रवर्तक ने कभी किसी पुराने संवत् को अपना नाम नहीं दिया तो चन्द्रगुप्त सा प्रबल प्रतापी सम्राट् यह जालसाजी कैसे कर सकता था कि प्राचीन मालव संवत् को अपने नाम से प्रचलित कर देता परन्तु योरोपियन दीर्घदृष्टि और विपुलबुद्धि की नवनिष्पत्ति यही है कि चन्द्रगुप्त परसंवत् की चोरी का अपराधी अवश्य है। उनकी यह व्यवस्था हेतुशून्य या प्रमाण रहित हो ऐसा नहीं है किन्तु उसकी पुष्टि में उन्होंने तथा उनके भारतीय मतपोषकों ने बड़े बड़े लेख लिख डाले हैं और तब से भारतीय इतिहास में कालिदास और विक्रम का समय बड़ा विवादास्पद विषय बना हुआ है।

उनके उत्तर में कालिदास और विक्रम को पहिली शताब्दी में मानने वाले भारतीय इतिहासज्ञों ने भी कई लंबे लेख लिखे थे और उनके निराकरण में दूसरे पक्ष के विद्वानों के भी कई निबन्ध निकलते रहे हैं। इस विषय में दीर्घकाल से इतनी 'भवति न भवति' होती रही है कि यदि उभय पक्ष के निबन्ध एकत्र किए जावें तो एक बड़ा पोथा बन जाय। कई मासों से प्रथमशताब्दी के पक्ष के परिहार में प्रयाग की विश्वविश्रुता लब्धकीर्ति सरस्वती पत्रिका में इतिहासविद्याविशारद विद्वच्छिरोमणि श्री पं० काशीनाथ कृष्ण लेले तथा शिवराम काशीनाथ ओक की निबन्धावली प्रकाशित होती रही है जिस को इन पंक्तियों का लेखक भी तत्त्वान्वेषणबुद्धि से मनोनिवेशपूर्वक पढ़ता रहा है और उनकी विवेचना से जो विचार उसके मन में उठे हैं उनको तत्त्वजिज्ञासार्थ नीचे निवेदन किया जाता है। श्री लेले तथा ओक महोदय के एक एक तर्क को लिख कर क्रमशः उसी की समालोचना लिखी जाती है।

(१) अपने निबन्ध के आदि में ही श्री लेले तथा ओक महाशयों ने ईसा की आठवीं शताब्दी तक विक्रम संवत् के साथ विक्रम शब्द न आकर मालव संवत् के नाम से उसके उल्लेख होने पर यह आपत्ति उठाई है कि उसके साथ विक्रम का नाम न आने से यह विक्रमसंवत् नहीं माना जा सकता और इस लिए ईसा की प्रथम शताब्दी में किसी विक्रम का अस्तित्व सिद्ध नहीं होता। यदि उनके इस तर्क को स्वीकार किया जाय तो उससे स्वयं उनका सिद्धान्त अर्थात् यशोधर्मन् देव हर्ष शिलादित्य उपनाम विक्रमादित्य के इस संवत् का सन् ५४४ ई० में अपना कर विक्रम नाम देने की स्थापना भी उड़ जाती है क्योंकि जब आठवीं शताब्दी तक कहीं भी उसके साथ विक्रम शब्द का पता नहीं है तो यह कैसे मान लिया जाय कि छठी शताब्दी में इस संवत् का विक्रम की उपाधि दी गई और तब से वह विक्रम संवत् के नाम से व्यवहृत होने लगा, क्योंकि आपके मतानुसार विक्रम शब्द तो इस संवत् के साथ आठवीं शताब्दी से ही पाया जाता है उससे पूर्व छठी शताब्दी में उस का विक्रमीकरण कैसे माना जाय। वास्तविक बात तो यह प्रतीत होती है कि यह संवत् मालवगणाधिपति विक्रम का संवत् होने के कारण और विशेषतः मालव देश में व्यवहृत रहने के हेतु से संज्ञापार्थ प्रायः मालव संवत् वा मालवगणसंवत् लिखा जाता था। इस का एक और उदाहरण भी विद्यमान है। नेपाल की प्रशस्तियों में व्यवहृत हर्षसंवत् उसके नेपाल में प्रचलित रहने के कारण नेपाल संवत् लिखा जाता था, जैसा कि नेपालनरेश प्रतापमल्ल की प्रशस्ति के निम्नलिखित पद्य से प्रकट है।

नेपाले संवतेऽस्मिन् हयगिरिमुनिभिः संयुते माघमासे,
सप्तम्यां शुक्लपक्षे रविदिन सहिते रेवतीऋक्षराजे।
योगे श्रीसिद्धिसंज्ञे रजतपणिलस-

त्स्वर्णमुक्ताप्रवालै—
रेकीकृत्य प्रदत्तं हयशतसहितं येन
दानं तुलाख्यम् ॥

दूसरे स्थानों में कहीं "हर्षान्नेपालवर्षे" शब्द आते हैं। जैसे केवल "नेपाले संवते" लिखे आने से उसके हर्ष के संवत् होने का खण्डन नहीं हो सकता वैसे ही किन्हीं स्थानों में "मालवसंवत्" या "मालवगणस्थित्या" के उल्लेख से उस संवत् के ईसा की प्रथम शताब्दी में विक्रम के द्वारा प्रचलित होने का खण्डन नहीं हो सकता और न ही केवल "मालव संवत्" या "मालवगणस्थित्या" के लिखे आने से यह अनुमान दृढ़ हो सकता है कि उसका संस्थापक मालवेश ईसा के पूर्व प्रथम शताब्दी का विक्रम न था। जैसे ही रोम-वर्षसंवत् रोमनिवासियों के नाम से प्रसिद्ध है, परन्तु वह रोम नगर की नींव डालने की घटना विशेष को यादगार में चलाया गया था। इसी प्रकार मालव संवत् का भी विक्रम के द्वारा ईसा से पूर्व प्रथम शताब्दी में शकविजय के उपलक्ष में चलाया जाना सर्वथा संभव है। इस का भी कोई प्रबल प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया गया कि प्राचीन काल के लोग मालव संवत् को प्रथम शताब्दी के विक्रम का चलाया न मानते थे। कम से कम दसवीं शताब्दी में तो यह लोगों का दृढ़ विश्वास था कि उस समय से लगभग एक सहस्र वर्ष पूर्व अर्थात् अब से प्रायः दो सहस्र वर्ष पूर्व प्रथम शताब्दी में विक्रम संवत् प्रवर्तक शकारि विक्रमादित्य विद्यमान था जैसा कि धार के परमारवंशी राजा मुञ्जदेव के समकालीन जैनपण्डित अमितगति के रत्नसन्दोह नामक ग्रंथ के अन्त के निम्नलिखित पद्य से प्रमाणित होता है।

समारूढे पूतत्रिदिववसतिं विक्रमनृपे
सहस्रेवर्षाणां प्रभवति च पञ्चाशदधिके।
समाप्तं पञ्चम्यामवति धरणींमुञ्जनृपतौ
सिते पक्षे पौषे बुधहितमिदं शास्त्रमनघम्

भावार्थः—राजा विक्रम के स्वर्गारोहण से १०५० वर्ष बीतने पर मुञ्जनृपति के शासनकाल में पौष के शुक्लपक्ष में यह विद्वानों के लिए हितकर अमूल्य शास्त्र बनाया गया।

(२) प्रथम शताब्दी में विक्रम का अभाव सिद्ध करने के लिए योग्य लेखक-युग्म ने दूसरी दलील यह दी है कि उस समय उज्जयिनी में शकारि शकप्रवर्तक विद्वदाश्रयदाता किसी विक्रम की विद्यमानता के साधक प्रमाणों का अभाव है। किन्तु विन्सेंट स्मिथ साहब ने अपने प्राचीन भारतवर्ष के इतिहास में लिखा है कि शक जाति के म्लेच्छों ने ईसा के कोई १५० वर्ष पहिले उत्तरपश्चिमाञ्चल से इस देश में प्रवेश किया। उनकी दो शाखाएँ हो गईं। एक शाखा के शकों ने तक्षशिला और मथुरा में अपना अधिकार जमाया और क्षत्रप नाम से प्रसिद्ध हुए। इनके सिक्कों से इन का पता ईसा के १०० वर्ष पहिले तक चलता है, उस के पीछे उनके अस्तित्व का कहीं पता नहीं लगता। दूसरी शाखा ने ईसा की पहली शताब्दी में काठियावाड़ पर अपना अधिकार किया, इन्हें गुप्तवंशी राजाओं ने हरा कर उत्तर की ओर भगा दिया। इस प्रकार इस दूसरी शाखा के पराभव कर्ता गुप्त हुए, किन्तु पहिली शाखा का किस ने विनाश किया, क्या बिना किसी के निकाले ही वे इस देश से चले गए? उनका पता पीछे कहीं भी क्यों नहीं चलता? इस का क्या इस के सिवा और कोई उत्तर हो सकता है कि ईसा से ५७ वर्ष पहिले विक्रमादित्य ने ही उन्हें नष्ट भ्रष्ट कर के इस देश से निकाल दिया? इसी विजय के कारण उस को शकारि उपाधि मिली और संवत् भी इसी घटना की याद में उसने चलाया। इस के अतिरिक्त आप के विशेषणमय से विशिष्ट विक्रम की ईसा की प्रथम शताब्दी में विद्यमानता के प्रमाण आप के ही उद्धृत और अभिमत ज्योतिर्विदाभरण के निम्नलिखित पद्यों से बढ़कर और क्या हो सकते हैं।

येनास्मिन् वसुधातले शकगणान्
सर्वा दिशः संगरे।

हत्वा पञ्च नवप्रमान् कलियुगे शाकप्रवृत्तिः कृता ॥

ज्योतिर्विदाभरण, अध्याय २२ श्लोक १३ ॥

भावार्थः-जिसने इस पृथ्वीतल पर युद्ध में शकों को मार कर कलियुग में अपना संवत् चलाया।

त्रिखेन्दुभिर्विक्रमभूपतेर्मिते, शाके ऽन्वितीह क्षयमासको भवेत् ।
अन्यः स्वकालाब्दगणेन हायने ऽधिमासयुग्मं क्षयमासवत्यतः ॥

ज्योतिर्विदाभरण, अध्याय ४ श्लोक ५ ॥

भावार्थः—विक्रम के संवत् १०३ में क्षयमास होगा और उस वर्ष २ अधिमास होंगे।

धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशङ्कु,
वेतालभट्टघटकर्परकालिदासाः ।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां
रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य॥

ज्योतिर्विदाभरण, अध्याय २२ श्लोक १०

भावार्थः—विक्रम की सभा में धन्वन्तरि, क्षपणक, अमरसिंह, शङ्कु, वेतालभट्ट, घटकर्पर, कालिदास, प्रसिद्ध वराहमिहिर, और वररुचि ये नौ रत्न हैं।

सत्याचार्य, वराहमिहिर, श्रुतसेन, बादरायण, मणित्थ, कुमारसिंह, आदि मुझ जैसे उसकी सभा में कालतन्त्र कवि अर्थात् ज्योतिषी हैं। श्लोक ८

विक्रमादित्य के दरबार में ८०० उमराव हैं और उसकी सेना में एक करोड़ वीर हैं। उसकी सभा में १६ पण्डित, १६ ज्योतिषी, १६ वैद्य, १६ भट्ट, १६ डाढ़ी, (गायनवादपटु) और १६ वैदिक रहा करते थे। श्लोक ११

उसकी राजधानी उज्जयिनी है और वह श्री महाकालेश्वर के सान्निध्य के कारण समूचे नगरवासियों के लिए मोक्ष प्राप्त करा देने वाली है। श्लोक १६ ॥

वर्षे सिन्धुरदर्शनाम्बरगुणैर्याते कलौ सम्मिते,
मासे माधवसंज्ञकेऽत्र विहितो, ग्रन्थक्रियोपक्रमः ।

अध्याय २२ श्लोक २१

सिन्धुर (८), दर्शन (६), अम्बर (०) गुण (३) अर्थात् वामक्रम से ३०६८ कलिवर्ष में वैशाख मास में मैंने यह ग्रन्थ बनाना आरम्भ किया।

इस कलिसंवत् के अनुसार विक्रम संवत् २४ आता है। आगे चल कर प्रशंसित विद्वान् लेखकद्वय ने इस कलिसंवत् को ज्योतिर्विदाभरण तथा ज्योतिषाचार्य वराहमिहिर की बृहत्संहिता और पञ्चसिद्धान्तिका में दिए हुए अपने अपने शकसंवत् से मिलाने के प्रयत्न में कलिकालारम्भ को सैकड़ों वर्ष पीछे ला डाला है, और खेद है, कि उनको शकसंवत् के समझने में भी भारी भ्रान्ति हुई है। वस्तुतः कलिकालारम्भ और शक संवत् की पूर्ण पर्यालोचना ही इस विवाद की निर्णायिका होगी और इस लिए इस निबंध में भी आगे चल कर कलिकालारम्भ और शक संवत् की पूरी विवेचना की जायगी।

(३) आगे चल कर आप ने चौथी से छठी शताब्दी तक गुप्तों के अभ्युदय और उस समय संस्कृत साहित्य की उन्नति का उल्लेख करके गुप्तों की शकारिता तथा विक्रमउपाधिधारिता तो मानी है किन्तु उनसे आप कविकुलगुरु ज्योतिर्विदाभरणकार कालिदास का संबन्ध नहीं पाते और छठी शताब्दी के उज्जयिनीनरेश यशोधर्मन् शिलादित्य को ही उक्त कालिदास का आश्रयदाता तथा विक्रमसंवत् का प्रवर्तक हर्षविक्रमादित्य सिद्ध करते हैं। यहाँ इस प्रसंग में विक्रम और कालिदास पर कुछ साधारण विचार अप्रासंगिक न होगा। भारतवर्ष में विक्रम और कालिदास अपने गुणों की उत्कृष्टता के कारण कुछ ऐसे नाम बन गए थे कि समय पर अनेक राजाओं और कवियों ने उनको धारण कर के अपने पूर्ववर्ती उन उन नामधारियों का अपने नाम राशियों के गौरव, महत्व और कीर्ति को प्राप्त करने का प्रयत्न किया था। यदि आप कुछ गवेषणा करेंगे तो भारतीय इतिहास में आप को दर्जनों विक्रम

और कालिदास मिलेंगे। खेद है कि पाश्चात्य-इतिहाससंशोधक और उनके कई भारतीय अनुयायी उन विक्रमों और कालिदासों के भिन्न भिन्न समयों और चरित्रों को परस्पर मिला कर गड़बड़ कर देते हैं। अब प्रथम आप विक्रमों तथा कालिदासों पर ही विचार कीजिए।

१ म विक्रमादित्य—ईसा से ५७ वर्ष पूर्व के संवत् प्रवर्तक विक्रम के अतिरिक्त हमको उससे ४०० वर्ष पूर्व एक और हर्ष विक्रमादित्य का पता मिलता है। इसने अपने नाम से हर्ष संवत् चलाया था जो नेपाल में प्रचलित था। प्रसिद्ध मुसलमान यात्री अलबेरूनी नेपाल तथा भारत के उत्तरीय प्रान्तों में प्रचलित विक्रम संवत् से ठीक चार-सौ वर्ष पहिले एक हर्षसंवत् का निर्देश करता है। वह अपनी प्रसिद्ध पर्यटनपुस्तक "अलबेरूनी का भारत" के ४९ वें अध्याय में लिखता है—

अब यज्दगर्द का ४०० वाँ वर्ष निम्नलिखित भारतीय संवतों के बराबर है—

(१) श्री हर्ष का १४८८ वाँ वर्ष
(२) संवत् या विक्रमसंवत् का १०८८ वाँ वर्ष
(३) शालिवाहन संवत का ९५१ वाँ वर्ष

यज्दगर्द के संवत् से ४१३२ वर्ष पहिले कलियुग आरम्भ हुआ था। पारसी वर्ष ४०० का नवरोज़ ९ मार्च सन् १०३१ ई० को पड़ता है। इस प्रकार अलबेरूनी के निर्देशानुसार विक्रम संवत् ५७ ई० पू०, हर्ष संवत् ४५७ ई० पू० तथा कलियुग ३१०१ ई० पू० आरम्भ हुआ था। नेपाल के कुछ ताम्रपत्रों में इसी हर्ष संवत् का निर्देश किया गया है। किन्तु डा० फ्लीट आदि कुछ पाश्चात्य ऐतिहासिकों ने प्रमादवश इस हर्ष को कन्नौज का हर्षवर्धन शिलादित्य समझ कर इस संवत् का आरम्भ ईसवी सन् ६०६-७ से मान लिया है और नेपाल के राजाओं की तिथियों को बिलकुल गड़बड़ा दिया है। इस प्रकार नेपाल के ५ वें सूर्यवंशी राजकुल के २७ वें राजा महाराजाधिराज शिवदेववर्मा के ताम्रपत्र में जो हर्षसंवत् ११९ दिया हुआ है उसको पाश्चात्य पंडित हर्षवर्धन का प्रचलित किया हुआ मानकर शिवदेववर्मा को ११९+६०६=७२५ ई० का मान लेते हैं। किन्तु रायल एशियाटिक सोसाइटी के आनरेरी सदस्य पं० भगवान लाल इन्द्र जी पी एच. डी. ने नेपाल से लाकर एक प्राचीन वंशावली—पार्वत्यवंशावली—प्रकाशित की है (देखो इंडियन ऍंटिक्वेरी जिल्द ८ पृष्ठ ४११—४२८) उस में नेपाल के राजाओं की वंशावली उनके शासनकाल सहित दी है। इस वंशावली के वर्णनानुसार नेपाल के ५ वें वंश अर्थात् सूर्यवंश का २७ वाँ राजा शिवदेववर्मन् ३३८ ई० पू० विद्यमान था। क्योंकि वहाँ यह स्पष्ट उल्लेख है कि ६ ठे अर्थात् ठाकुरी वंश के पहिले राजा अंशुवर्मन् का राज्याभिषेक ३००० वें कलिवर्ष अर्थात् १०१ ई० पू० हुआ था, उसने ६८ वर्ष (१०१-३३ ई० पू०) राज्य किया था। यह भी लिखा है कि उस के समय में विक्रमादित्य नेपाल में आया और उसने अपना ५७ ई० पू० का संवत् चलाया। आगे यह निर्देश है कि अंशुवर्मन् ५ वें वंश (सूर्यवंश) के ३१ वें (अन्तिम) राजा विश्वदेववर्मन् का जामाता तथा उत्तराधिकारी था, विश्वदेववर्मन् ने ५१ वर्ष (१५२—१०१ ई० पूर्व) राज्य किया था। इसी प्रकार उक्त वंश के ३० वें राजा विष्णुदेववर्मन् ने ४७ वर्ष (१९९—१५२), २९ वें राजा भीमदेववर्मन् ने ३६ वर्ष (२३५—१९९ ई० पू०), २८ वें राजा नरेन्द्रवर्मन् ने ४२ वर्ष (२७७—२३५ ई० पू०), तथा २७ वें राजा शिवदेववर्मा ने ६१ वर्ष (३३८—२७७ ई० पू०) राज्य किया था। इस प्रकार नेपालवंशावली में उल्लिखित शिवदेववर्मा का राज्याभिषेककाल ३३८ ई० पूर्व ठीक वही है जो अलबेरूनी के उल्लेखानुसार ४५७ ई० पू० आरम्भ होने वाले हर्ष संवत् के ताम्रपत्र में निर्दिष्ट ११९ वें वर्ष से मिलता है। इसी हर्षविक्रम का वर्णन काश्मीर के संस्कृत इतिहास राजतरङ्गिणी के निम्नलिखित श्लोकों में है—

तस्मिन् क्षणे हिरण्योऽपि
शान्ति निःसन्ततिर्ययौ ॥ १२४ ॥

तस्मिन्नेतर्ह्युज्जयिन्यां, -
श्रीमान् हर्षापराभिधः ।
एकच्छत्रश्चक्रवर्ती,
विक्रमादित्य इत्यभूत् ॥ १२५ ॥

* * * *

म्लेच्छोच्छेदाय वसुधां,
हरेरवतरिष्यतः ।
शकान् विनाश्य येनादौ,
कार्यभारो लघूकृतः ॥ १२६ ॥

भावार्थः—उस समय काश्मीर का हिरण्य राजा भी सन्तान हीन हो कर मर गया, उसी समय उज्जयिनी में हर्षापरनामधेय श्रीमान् विक्रमादित्य एकच्छत्र सम्राट् था। १२४-५।

म्लेच्छों का उच्छेद करने के लिए श्री महाविष्णु पृथ्वी पर अवतार ग्रहण करना चाहते थे, पर इससे पहिले ही विक्रमादित्य ने शकों को नष्ट कर दिया। उस कारण महाविष्णु के सिर का बोझ हलका हो गया। १२६।

इस अवतरण में महाराज हर्ष विक्रमादित्य को शकारि स्पष्ट लिखा है। अब यह विवेचनीय है कि उस समय (४१७ ई० पू०) हर्ष विक्रम ने किन शकों का दमन किया था। प्रसिद्ध यूनानी ऐतिहासिक हिरोडोटस, ज़ेनोफ़न तथा अन्य प्राचीन पाश्चात्य ऐतिहासिकों के वर्णनानुसार प्रसिद्ध पारसीक सम्राट् प्रथम दारा ने ईसा से लगभग ५०० वर्ष पूर्व भारत के पश्चिम में सिंध के उस पार के प्रदेशों पर अधिकार करके वहाँ पर एक सत्रपी (फ़ारसी क्षत्रपावन, संस्कृत क्षत्रप) स्थापित की थी। यह सत्रपी उसके पीछे क्षयार्ष अरक्षीज़ (४८६-४६४ ई० पू०) और आर्तक्षत्र (आर्तज़ोक्सी ४६४ से ४२४ ई० पू० तक) के समय तक रही। आर्तक्षत्र बहुत विषयी और निर्बल राजा था, उसी के समय में पारसीक राज्य से भारतीय प्रदेश निकल गए। अब इन प्रदेशों से पारसी अधिकार का विनाशक यही ४५७ ई० पू० का हर्षविक्रम हो सकता है। यह ध्यान रहे कि भारतीय लोग पारसदेश को शकस्थान कहते थे और पारसियों को शकनाम से व्यवहार करते थे। इस लिए यह प्रमाण पुष्ट और प्रबल अनुमान है कि ईसा से ४५७ वर्ष पूर्व हर्षविक्रम ने सिंधुपार के प्रदेशों से शकों को निकाल कर शकारि की उपाधि धारण की थी और इसी का उल्लेख राजतरङ्गिणी के उपर्युक्त पद्य में हुआ है। इसी हर्षविक्रमादित्य ने राजतरङ्गिणी के उपर्युक्त अवतरण में वर्णित काश्मीर नरेश हिरण्य के निःसन्तान मरने पर अपने मित्र महाकवि कालिदासपरनामक मातृगुप्त को काश्मीर के राजसिंहासन पर बैठाया था और मातृगुप्त कालिदास ने वहाँ कुछ वर्ष राज्य कर के मृत हिरण्य के भतीजे प्रवरसेन के आजाने पर वह राज्य उसको सौंप दिया था। यही मातृगुप्त कालिदास प्रथम महाकवि कालिदास है और संस्कृतसाहित्य के गौरवधन प्रसिद्ध अभिज्ञानशकुन्तल, मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय नामक तीन नाटक उसी की कृति हैं; इस का प्रमाण यह है कि अभिज्ञानशाकुन्तल का प्रसिद्ध पद्यार्ध "सतां हि संदेहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः" श्रीकुमारिलभट्ट ने जैमिनि मुनिकृत पूर्वमीमांसा के शबरभाष्य पर अपने प्रसिद्ध श्लोकवार्तिक में उद्धृत किया है।

कुमारिलभट्ट का जन्मसमय जिनविजयकाव्य में इस प्रकार वर्णित है—

"ऋषिर्वारस्तथा पूर्णं,
मर्त्याक्षौ वाममेलनात् ।
एकीकृत्य लभेतांकः,
क्रोधी स्यात् तत्र वत्सरः ॥
भट्टाचार्यकुमारस्य,
कर्मकाण्डैकवादिनः ।
ज्ञेयः प्रादुर्भवस्तस्मिन्,
वर्षे यौधिष्ठिरे शके ॥"

अर्थात् यदि हम ऋषि (७), वार (७), पूर्ण (०) और मर्त्याक्षि (२) को वामगति से क्रमपूर्वक मिलाएँ तो २०७७ क्रोधीनामक संवत्सर निकलता है, इस २०७७ युधिष्ठिरशक में

सर्वकालवादी भट्टाचार्यकुमार का जन्म हुआ था।

जैन लोग भूल से युधिष्ठिरशक कलियुग से ४६८ वर्ष पीछे मानते हैं (इस का विवेचन आगे किया जायगा), किन्तु वस्तुतः, जैसा पहिले लिखा जा चुका है, महाभारतानुसार युधिष्ठिरशक कलियुगारम्भ से ३७ वर्ष पूर्व युधिष्ठिर के राज्याभिषेक से प्रारम्भ होता है। इस लिए २०७७ में ४६८ जोड़ देने से २५४५ कलिसंवत्सर निकलता है। अर्थात् कुमारिलभट्ट का जन्म २५४५ कलिसंवत्सर तदनुसार ५५७ वर्ष ईसा से पूर्व हुआ था। कुमारिलभट्ट के अपने श्लोकवार्तिक में अभिज्ञानशाकुन्तल के श्लोक का उद्धरण करने से अभिज्ञानशाकुन्तलकार महाकवि कालिदास का कुमारिल का समकालीन वा पूर्ववर्ती होना सिद्ध होता है। कवि कालिदास के श्रीहर्ष विक्रमादित्य का मित्र तथा आश्रित होने का वर्णन ऊपर हो चुका है, यह भी बतलाया जा चुका है कि श्रीहर्ष विक्रमादित्य ने ईसा से ४५७ वर्ष पूर्व अपना हर्ष संवत् चलाया था। यह संवत् उन्होंने शकों पर विजय प्राप्ति के उपलक्ष में अपनी शक्ति और वृद्धि के यौवन काल में ही चलाया होगा और उनका सिंहासनारोहणकाल इस समय से लगभग ५० वर्ष पूर्व (५०७ ई० पू०) रहा होगा, यह प्रबल अनुमान है। जिनविजय से कुमारिलभट्ट का आयुमान ६३ वर्ष प्रमाणित होता है। जिनविजय के निम्न लिखित पद्यों में भगवान् आदि शङ्कराचार्य का प्रादुर्भाव २१५७ जैनयुधिष्ठिरशक = ४७७ ई० पू० में तथा उनकी कुमारिल से भेंट १५ वर्ष की आयु में वर्णित है।

"ऋषिर्बाणस्तथा भूमि,
र्मर्त्याक्षौ वाममेलनात्।
एकत्वेन लभेताङ्का-
स्ताम्रास्तत्र वत्सरः॥"
"पश्चात् पञ्चदशे वर्षे,
शंकरस्य गते सति।
भट्टाचार्यकुमारस्य
दर्शनं कृतवान्शिवः॥"

अर्थात् "ऋषि [७], बाण [५], भूमि [१], मर्त्याक्ष [२], को क्रम पूर्वक मिलाने से २१५७ ताम्राक्ष नामक संवत्सर निकलता है"

"शङ्कर [शङ्कराचार्य] ने [आयु का] पन्द्रहवाँ वर्ष बीतने पर भट्टाचार्य कुमारिल का दर्शन किया।"

यह परम प्रसिद्ध बात है कि भगवान् आदि शङ्कराचार्य का प्रादुर्भाव ४२ वर्ष की आयु में हुआ था इस लिए उससे १७ वर्ष पूर्व वे कुमारिलभट्ट से उस समय मिले थे जब कि वे तुषानल में प्रविष्ट होकर अपने शरीरपात से जैनों से वञ्चनापूर्वक अपने विद्याध्ययन का प्रायश्चित कर रहे थे, और उनके प्रादुर्भाव के उपर्युक्त ४७७ ई० पू० से १७ वर्ष घटाने से कुमारिलभट्ट का देहावसानकाल ४९४ ई० पू० निकलता है और इस से कुमारिलभट्ट की आयु ६३ वर्ष प्रमाणित होती है। यदि उक्त श्लोकवार्तिक को कुमारिलभट्ट ने अपने स्वर्गवास से चार वर्ष पूर्व रचा हो तो ४९८ वर्ष ईसा से पूर्व उनकी मृत्यु के समय से पूर्व ही अभिज्ञानशाकुन्तलकार और हर्ष विक्रमादित्य के आश्रित महाकवि कालिदास का होना प्रमाणित होता है। इस लिए सिद्ध हुआ कि नाटककारकालिदास कुमारिलभट्ट के समकालीन थे और ईसा से ५०० वर्ष पहिले विद्यमान थे। यह भी प्रमाणित होता है कि वे हर्ष विक्रमादित्य के मित्र तथा आश्रित थे, क्योंकि उन्होंने अपने विक्रमोर्वशीय नाटक में उसके नायक पुरूरवा का विक्रमोपाधि से उल्लेख करके अपने आश्रयदाता और मित्र हर्षविक्रमादित्य का सांकेतिक निर्देश किया है। हमारे मत से नाटककार कालिदास से रघुवंशादि महाकाव्यकार कालिदास भिन्न है, जैसा कि आगे चल कर दिखलाया जायगा।

नव स्नातकों के प्रति

विदाई का गीत।

(लेखक—ब्र० भद्रजित, गुरुकुल वृन्दावन)

(१)

विदाई दे रहे भाई हमें पर भूल मत जाना।
बुराई जो हुई हम से उसे मत चित्त में लाना ॥ टेक ॥

(२)

चले तुम छोड़ सूना आज इन यमुना निकुंजों को।
हमारे पर हृदय-मन्दिर न सूने कर कहीं जाना ॥ विदाई० ॥

(३)

हमारे प्रेम बन्धन से हृदय कैसे छुड़ा लोगे।
सभी तुम भूल बचपन का हमारे साथ अठिलाना ॥ विदाई० ॥

(४)

सदा फूलो फलो परमेश से यह हम मनाते हैं।
जगत में वेद की वीणा बजाते तुम सदा जाना ॥ विदाई० ॥

(५)

हमें चातक बनाकर तुम यहां पर छोड़ जाते हो।
कभी तो स्वाति दर्शन-जल हमें आकर पिला जाना ॥ विदाई० ॥

(६)

हमें तो तुम चले जाओ दिलाकर धैर्य पर भाई।
दुखी माता की आंखों का नयन जल पोंछते जाना ॥ विदाई० ॥

(७)

बढ़ो कर्तव्य पथ में तुम दयामय भी सहायक हों।
सदा दुख द्वन्द के फन्दे हमारे काटते जाना ॥ विदाई० ॥

(८)

हमें अब छोड़ कर कुल भूमि से तुम दूर जाते हो।
विदाई की सजल आंखें हमारी भूल मत जाना ॥ विदाई० ॥

गुरुकुल वृन्दावन को छोड़ते हुए इस वर्ष के स्नातकों के प्रति यह कविता पढ़ी गई थी।

* आर्य और दास *

(ले० श्री पं० भीमसेन जी विद्यालङ्कार)

पिछले लेख में हम यह दिखा चुके हैं कि आर्य्य सभ्यता में दास प्रथा का कोई स्थान नहीं है। इस दृष्टि से हमारी आर्य्य सभ्यता किसी दूसरी सभ्यता से कम नहीं है। इस लेख में संस्कृत-साहित्य के प्रमाणों द्वारा यह दिखाने का यत्न किया जायगा कि भारतवर्ष में दास शब्द किन अर्थों में प्रयुक्त होता रहा है। दास शब्द प्रयोग की मीमांसा से यह भी पता लगेगा कि भारतवर्ष के दास युरोपियन दासों की तरह किसी श्रेणी या निबिड़-संगठन में संगठित नहीं थे।

रोम तथा ग्रीस में दासों ने संगठित हो कर, कई बार उच्च श्रेणियों के साथ लड़ाई लड़ी थी। स्पार्टा के हैलट तथा रोम के ग्लैडिएटर्स, इस बात के ऐतिहासिक प्रमाण हैं। परन्तु भारतवर्ष के इतिहास में ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता जहाँ दासों ने अपने स्वामियों का संगठितरूप से विरोध किया हो।

इस का एक मात्र कारण यह था कि यहाँ की दास श्रेणी को सदा इस बात की छुट्टी थी कि वह जब चाहे योग्यतानुसार, उच्च श्रेणी में प्रविष्ट हो सके।

अंग्रेज़ी भाषा में दास शब्द के लिए (स्लेव) शब्द का प्रयोग किया जाता है। (स्लेव) का मूल अर्थ (कैपटिव) या कैदी है। विजेता लोग युद्धों में जिन को जीतते थे उन्हें वे अपनी सम्पत्ति समझते थे। भारतवर्ष में भी इस अर्थ में दास शब्द का प्रयोग होता था। मनुस्मृति में भी इसी प्रकार पराजित शत्रु के लोगों को दास, दासी बनाने का उल्लेख है। दास प्रथा का प्रारम्भ कैसे हुआ? क्या युद्धों के कारण ही यह प्रथा प्रचलित हुई? इन प्रश्नों पर विचार करने से पूर्व हम संस्कृत साहित्य द्वारा यह दिखाएंगे कि भारतवर्ष में दास शब्द किन २ अर्थों में प्रयुक्त होता रहा है। इस विषय में दास शब्द की मूल धातु या व्युत्पत्तियों पर प्रकाश डालना आवश्यक है। संस्कृत साहित्य के भिन्न २ प्रामाणिक कोशों मे इस प्रकार व्युत्पत्तियाँ तथा मूल धातु बताए गए हैं:—

दास दाने, भ्वादि, सकर्मक। 'भृतिरस्मै दीयते इति'। दास हनने (यो नः कदाचिदपि दासति द्रुहः। दास दशने। ददात्यङ्गं स्वामिने उपचाराय)।

दास वह है जिसे भृति या वेतन दिया जाय। जो आदमी अपने स्वामी के हाथ अपने शरीर को बेच दे वह भी दास है। शूद्रों के नाम के अन्त में जो दास शब्द आता है वह इस बात को द्योतित करता है कि दास शारीरिक परिश्रम का कार्य्य कर भृति द्वारा जीवन निर्वाह करते हैं। दास शब्द का प्रयोग (दास उपक्षेपे) निन्दा तथा नाश अर्थ में भी होता है। कई स्थानों पर दास और दस्यु को भी पर्यायवाची तथा समानार्थक

माना गया है। 'पृक्षये च दासवेशाय चावह!' ऋ० २।१३।८।

इसका अर्थ किया गया है 'दासानां दस्यूनां वेशाय नाशाय'। दस्युओं के नाश के लिए। दत्तक पुत्रों को भी दास शब्द से कहा जाता है क्योंकि इन का पालन पोषण भी कृत्रिम दासों की तरह किया जाता है। भृगु आचार्य की सम्मति में वह आदमी दास है जो अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को छोड़ कर, एकान्त भाव से दूसरे का सेवक बन जाता है। वे लिखते हैं:—

"स्वतन्त्रस्यात्मनो दानाद्दासत्वं दारवद् भृगुः। यथा भर्तुः सम्भोगार्थं स्व शरीर दानाद्दारत्वम् तथा स्वतन्त्र स्यात्मनः परार्थत्वेनदानाद् दासत्वमिति भृगुराचार्योमन्यते। अनेनात्यन्तपारार्थ्य मासाद्य शुश्रूषका दासाः। परार्थ्य मात्रमासाद्य शुश्रूषकास्तुकर्मकरा इति।"

भृगु आचार्य लिखते हैं कि जिस प्रकार स्त्री पति के लिए अपने आपको भोग्य रूप में समर्पित करती है उसी प्रकार जो व्यक्ति अपने आपको स्वामी के लिए समर्पित करता है वह दास है। जो रुपया या धन लेने में पराश्रित हो वह कर्मकर कहलाता है। भृगु आचार्य की सम्मति में स्त्रियें भोग्य पदार्थ हैं। भारतीय इतिहास से परिचय रखने वाले जानते हैं कि भारत में स्त्रियों को भोग्य वस्तु नहीं समझा जाता था।

मध्यकाल में ही स्त्रियों को भोग्य समझा जाता था; उसी समय मनुष्य को भोग्य सम्पत्ति का रूप दिया गया और दास को भी भोग्य वस्तु समझा जाने लगा। तथापि इस उद्धरण से यह स्पष्ट है कि यहाँ भी दासों को मनुष्य की सम्पत्ति समझा जाता था। परन्तु इस अवस्था के कई रूप थे। इन भिन्न २ रूपों का खुलासा मनुस्मृति में तथा याज्ञवल्क्यस्मृति में इस प्रकार दिया है:—

मनुस्मृतिः—

ध्वजा हृत = युद्ध में जीता हुआ दास
भक्तदास = केवल भोजन पर निर्वाह करते रहने वाला दास
गृहज = घर की दासी से उत्पन्न हुआ
क्रीत = मोल लिया हुआ दास
दत्रिम = जिसे किसी ने दूसरे को दास रूप में दिया हो।

पैतृक = जो बाप दादों से दाय में मिला हो
दण्डदास = जिसे राजा ने दास होने का दण्ड दिया हो।

याज्ञवल्क्य स्मृति में दासों के ये भेद दिए हैं:—

गृहजात, क्रीत, दाय—प्राप्त।
अन्न्य काल भृत् = अकाल या दुर्भिक्ष में जो पाला गया हो।

आहित = जो स्वामी से इकट्ठा धन लेकर उसे सेवा द्वारा चुकाता हो।
ऋण दास = जो ऋण लेकर दासत्व में पड़ा हो।

युद्ध दास = युद्ध में दास।
स्वयमुपात्त = स्वयं दास बनने आया हो।
प्रव्रज्या वसित = जो सन्यास से पतित हो गया हो।
कृत्तदास = जिसने कुछ कमाने के लिये सेवा करनी स्वीकार की हो।

भक्त दास आत्म विक्रेता।

वडवाहृत=जो किसी बड़वा या दासी से विवाह करने से दास हुआ हो।

लब्ध दास=जो किसी से मिला हो।

इस शब्दार्थ विवेचन से स्पष्ट है कि संस्कृत साहित्य में दास शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त होता था। दास का मतलब नौकर, दत्तक, गुलाम, कर्ज़ आदि था।

भारत में दास प्रथा का प्रारम्भ युद्धों, यज्ञों तथा महाजनों के लेन देन से हुआ है।

युद्ध-दास का कोई प्रामाणिक उदाहरण नहीं मिलता। यज्ञों में शुनःशेप के क्रीत दास होने की कथा आती है परन्तु वहाँ भी अन्त में विश्वामित्र की सहायता से शुनःशेप दासता से मुक्त हो जाता है। यह कथा शतपथ ब्राह्मण तथा वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड में आती है। वाल्मीकि रामायण में दास शब्द का प्रयोग प्रेष्य अर्थ में किया गया है। वाल्मीकि रामायण में जाति-दासी का भी उल्लेख है।

मन्थरा कैकेयी को कहती है:—

'प्राप्त वसुमतीं प्रीतिं पुनीतां हत विद्विषाम् उपस्थास्यति कौशल्यां दासी वत्त्वं कृताञ्जलिः'। 'एवं च त्वं सहास्माभिस्तस्याः प्रेष्या भविष्यति' पुत्रश्च तव रामस्य प्रेष्यत्वं हि गमिष्यति'। मन्थरा कहती है कि राम के राजा बनने पर, हम सब कौसल्या तथा राम के दास, प्रेष्य, हुकम बजाने वाले नौकर हो जाएँगे।

वाल्मीकि रामायण से पता लगता है कि आर्य्य गृहों में, आर्य सभ्यता में, पुत्रों को बेचना, या किसी दूसरे मनुष्य को जड़ वस्तु की तरह समझना, अनार्यत्व है, म्लेच्छ लोग ही इस प्रथा को पसन्द कर सकते हैं। रामचन्द्र के गुणों का कीर्तन करते हुए कवि लिखते हैं:—

'आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः'। रामचन्द्र आर्य था, क्योंकि वह मनुष्य मात्र को मनुष्य समझता था। उस ने गुह तथा निषाद को दास व अस्पृश्य नहीं समझा। वह स्त्री जाति को भोग्य नहीं समझता था अपितु, मातृ शक्ति के रूप में उस की पूजा करता था।

राजा दशरथ लाचार हो कर कैकेयी को कहते हैं:—

'अनार्य इति मामार्याः पुत्रविक्रायकं ध्रुवम्, विकरिष्यन्ति रथ्यासु सुरापं ब्राह्मसंभवम्'। मुझ पुत्र विक्रेता को लोग अनार्य कह कर, गलियों और बाज़ारों में बदनाम करेंगे। वाल्मीकि रामायण ने भी दास-प्रथा को आर्य सभ्यता के विरुद्ध बताया है।

संस्कृत साहित्य में दास प्रथा के सम्बन्ध में विशेष रूप से प्रकाश डालने वाला ग्रन्थ मृच्छकटिक है। जो लोग भारतीय दास प्रथा का अनुशीलन करना चाहते हों उन के लिए यह पुस्तक बड़े काम की है। हम यह लिख चुके हैं कि भारत वर्ष में दास तथा आर्य्य शब्द अंग्रेज़ी के (स्लेव) की तरह रूढ़ि नहीं थे। इस का प्रमाण इस ग्रन्थ में मिलता है।

वसन्तसेना को एक स्थान पर (२६पृष्ठ) जन्म दासी, गर्भ दासी कहा है। दूसरे स्थान पर (५१ पृष्ठ पर) उसी को आर्या नाम से सम्बोधित किया है। इसी नाटक के ८२ पृष्ठ पर 'दास्याः पुत्रः' शब्द, सेवक तथा नौकर अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। "एष इदानीं दास्या पुत्रो भूत्वा पानीयं गृह्णाति"। शर्विलक मदनिका के साथ विवाह करना चाहता है परन्तु मदनिका वसन्तसेना की दासी है। इस हालत में जब तक वसन्तसेना मदनिका को दासीपन से मुक्त न करे विवाह नहीं हो सकता। इसी सिलसिले में वसन्तसेना की ओर से मदनिका कहती है :—

"शर्विलक! भणिता मयार्या। तदा भणति यदि ममछन्दस्तदा विनार्थं सर्वं परिजन (भृत्यादि को) मभुजिष्यं करिष्यामि"। वसन्तसेना कहती है कि यदि मेरा बस चले तो मैं सब को भुजिष्यता, दासता से बिना किसी आर्थिक अदला बदली के मुक्त कर दूं।

आखिर चतुर्थ अंक में वसन्तसेना मदनिका को दासीपन से मुक्त कर देती है और शर्विलक का मदनिका से विवाह हो जाता है।

दासीपन से मुक्त मदनिका जाती हुई वसन्त सेना से कहती है:—

मदनिका—परित्यक्तास्म्यार्यया—आर्याने मुझे त्याग दिया।

वसन्त सेना—साम्प्रतं त्वमेव वन्दनीया सम्वृत्ता। अब तू भी वन्दनीय आर्या हो गई है।

शर्विलक—स्वस्ति भवत्यै, मदनिके!— सुदृष्टः क्रियतामेष शिरसा वन्द्यतां जनः। यत्र ते दुर्लभं प्राप्तं वधूशब्दावगुण्ठितम्॥

अर्थात्, अब तुझे जिसकी कृपा से वधू-शब्द मिला है उसे नमस्कार कर।

इस उद्धरण से यह स्पष्ट है कि भारतीय रीति रिवाज़ों में दासों को स्वतन्त्र मनुष्य बनाने का विधान था। जिन लोगों ने पश्चिमीय तथा अमेरिकन दास प्रथा का अनुशीलन किया है उन्हें मालूम है कि वह कितनी जटिल थी। दास लोग कई कारणों से बिक जाते थे और वे जिन के हाथ बिक जाते थे वे स्वामी दासों के तन मन सब के मालिक थे। परन्तु भारत में यह हालत नहीं थी। इसी नाटक के अष्टम अङ्क में यह उल्लेख है कि शकार वसन्तसेना को अपने दासों द्वारा मरवाना चाहता है। दास स्त्री हत्या में पाप समझता है और कहता है कि:—

'प्रभवति भट्टकः शरीरस्य। न चारित्र्यस्य'। स्वामी मेरे शरीर के मालिक हैं चारित्र्य या सदाचार के नहीं। इसी प्रकार इस नाटक की गम्भीर आलोचना करने से यह भी पता लगता है कि मध्यकाल में दास प्रथा को दूर करने, निचली जातियों को उच्च जाति में प्रविष्ट कराने का काम बुद्ध भगवान् के शिष्यों ने पर्याप्त मात्रा तक किया था।

नाटक का भिक्षुपात्र बुद्धोपासिका वसन्तसेना की प्रशंसा तथा रक्षा करता है क्योंकि वसन्तसेना दासों को दासता से छुड़ाने वाली थी। आर्य चारुदत्त भी इसी विशेषता के कारण सर्व प्रिय है। उस ने लोकापवाद की परवाह न करते हुए जन्म-

दासी वसन्तसेना को आर्य्य जाति में मिलाने में संकोच नहीं किया।

इस सारे विवरण का सार यही है कि भारतीय साहित्य में अनेकों ऐसे उदाहरण हैं जहाँ दासों को (किसी भी प्रकार के दास क्यों न हों) दासत्व के बन्धन से मुक्त कराने का यत्न होता रहा है।

कौटिल्य-अर्थ-शास्त्र के दास-कल्प प्रकरण में कई उपाय बताये गए हैं जिन के द्वारा भिन्न २ तरह के दासों को दासत्व से मुक्त किया जा सकता है।

इन सब उपायों का विस्तृत विवरण यहाँ अप्रासंगिक है।

यह ग्रन्थ मुसलमान शासन काल से पूर्व-काल का है। इस का मतलब यह है कि भारत वर्ष में चिरकाल से, यूरोपियन सभ्यता की उत्पत्ति से भी पूर्व, दास-प्रथा को दूर करने की कोशिश की जा रही थी।

युरोप में १८ वीं तथा १६ वीं सदी में ही दास प्रथा को नष्ट करने का आन्दोलन जारी किया गया है। यूरोप में एक ऐसा भी समय था जब कि वहाँ के विद्वान् दास-प्रथा को समाज का आवश्यक अंग समझते थे। परन्तु भारत वर्ष के इतिहास में कोई ऐसा विद्वान् नहीं दिखाई देता जो दास प्रथा को आवश्यक तथा अनिवार्य समझता हो। दोनों सभ्यताओं तथा दोनों साहित्यों का यह मौलिक भेद भारतीय सभ्यता की विशेषता को प्रकट कर रहा है। बड़ी २ संख्या में दासों की बिक्री तथा दासों का व्यापार मुसल्मानी शासन के बाद ही प्रचलित हुआ था। शूद्रों को दास समझना ठीक नहीं है। कौटिल्य अर्थशास्त्र तथा मनुस्मृति में आर्य तथा शूद्र के गुणों का वर्णन पृथक् किया गया है। ईसाइयों तथा मुसलमानों के क्रान्तिकारी धार्मिक आक्रमण तथा हिन्दुओं की कट्टरता के कारण दलित भाइयों और अब्राह्मणों की एक श्रेणी मध्यकाल से बन गई है जो इस समय भारतीय स्वराज्य के रास्ते में बाधक हो रही है। वर्तमान विदेशी सरकार ने अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए जान-बूझ कर इन दलित भाईयों को श्रेणी का रूप देना शुरू किया है।

यदि भारतीय शूद्रों को स्वकीय युद्धों, ऊँची जातियों तथा दलित जातियों के कलह से बचाना है तो प्रत्येक भारत-हितैषी को चाहिए कि वह भारतीय सभ्यता के उच्च आदर्श को सामने रखते हुए दलित जाति को अपना कर, भारतीय सभ्यता को दासता के कलंक से मुक्त करे। तभी हमारा देश सच्चे अर्थ में आर्य्यावर्त (मनुष्य को मनुष्य समझने वाले लोगों का निवास स्थान) बन सकेगा।

हमारा देश आर्यावर्त इसी लिए कहलाता था क्योंकि यहाँ की साधारण जनता आर्य्य थी, वह मनुष्यमात्र को अपना सा समझती थी। उस समय की आर्य्य जनता ने—"आर्य्यः स्वमिव परं पश्यति" के आदर्श को अपने जीवन में चरितार्थ किया था। जब भारत में यह दृश्य फिर उपस्थित होगा तभी हम गौरव के साथ आर्य्य-सभ्यता के नाम पर अभिमान कर सकेंगे।

मैं और तू

(पं० शान्तिस्वरूप विद्यालङ्कार अमरीका)

जाऊँगा मैं भी उधर ही तू जिधर ले जायगा ।
सब खुशी से देख लूंगा जो मुझे दिखलायगा ॥
यदि विपद कुछ आपड़ेगी तो भी तू ही साथ है ।
शोक दुख सब मैं सहूँगा सामने जो आयगा ॥ १ ॥

* * * *

छोड़ ही बैठा हूँ घर तो पास क्या या दूर क्या ।
बांधली मैंने कमर, है कौन जो खुलवायगा ॥
यदि पार हूं मैं सिन्धु के तो तू भी तो उस पार है ।
चिन्ता करूं किस बात की फिर, मैं कि तू भटकायगा ॥ २ ॥

* * * *

जिस नाव में मै चढ़ रहा हूँ तू वहां पहिले से है ।
फिर क्यों डरूँ ? है कौन जो अब भी मुझे बहकायगा ॥
मंज़िल भले ही है कड़ी पर मैं अकेला हूँ नहीं ।
पूरा भरोसा है मुझे-तू ही मुझे पहुँचायगा ॥ ३ ॥

* * * *

तूफ़ान में मेरी कभी यदि नाव यह चकरायगी ।
तो हाथ तेरा डांड बन कर पार खुद करवायगा ॥
मै तो कहूँगा सर्वदा मैं सब भयों से दूर हूँ ।
तू सूर्य है मेरे निकट, फिर भय-तिमिर क्या छायगा ॥ ४ ॥

* * * *

जब बादलों की गड़गड़ाहट भी डरावेंगी मुझे ।
तू ही चमक कर बादलों में मार्ग तब बतलायगा ॥
पीछे कदम रक्खूँ न मैं प्रभु शक्ति वह तू दे मुझे ।
तेरे बिना है कौन जो मुझ से मुझे मिलवायगा ॥ ५ ॥

भगवती मदिरा

(आचार्य गड़बड़ानन्द)

महात्मा गान्धी का कहना कि 'शराब के दूर होने से भारत स्वराज्य के नज़दीक पहुँच जायेगा' मुझे कभी सच नहीं मालूम हुआ। पिछली लड़ाई में अंग्रेज़ी सरकार रोज़ हज़ारों बोतलें सिपाहियों को पिलाती थी। यही कारण है कि 'देवी' ने सिद्ध हो कर बृटिश सरकार को फ़तह दी। स्वराज्य की लड़ाई में काँग्रेस के योद्धा बग़ैर ब्राण्डी के क्या ऊँघा करेंगे ?

* * *

कल देखा कि एक महात्मा बाज़ार की गन्दी गली में समाधि लगाये भगवती ब्राण्डी का आराधन कर रहे हैं। पता लगा कि यह महात्मा 'देवी' के प्रताप से द्वन्द्वातीत हो चुके हैं। 'विषय' और 'विषयी' का भेद टूट चुका है। सुख, दुःख का पर्दा उठ चुका है। महात्मा बोले—"मैं सूरज में विचर रहा हूँ, चाँद में घूम रहा हूँ"। मैं समझ गया कि भगवती देवी के प्रताप से महत्मा को सब अणिमादि सिद्धियाँ मिल चुकी हैं। सूरज चाँद को जब चाहें हाथ लगा सकते हैं। थोड़ी देर में महात्मा उठे और गालियों का 'सहस्रनाम' जपते हुए एक राही पर टूट पड़े। खूब गुत्थमगुत्था हुई। महात्मा को देवी के अनुग्रह से 'हस्तिबल' मिल चुका था; उन्हों ने राही को पटक दिया, घूंसे और मुक्के से अधमरा कर दिया। लोग चारों ओर से आ इकट्ठे हुए। देवदूत (पुलिस) भी हाज़िर हो गये। महात्मा जी को सदेह स्वर्ग (जेल) पहुँचाया गया। तब से मुझे पता लगा कि देवी का कितना प्रताप है। इस का रस समाधि सिद्ध कराने का एक 'मिक्श्चर' है। जैसे पहिले लोग महीनों पैदल सफर कर गंगा आदि तीर्थों पर पहुँचते थे पर आजकल रेलगाड़ी से महीनों का रास्ता दिनों में तय हो जाता है उसी तरह पहिले लोग सालों तप और योग से जिस पद को नहीं पाते थे उसे अब लोग देवी की कृपा से सहज में ही पा लेते हैं। मैं मदिरा को स्वर्ग पहुँचाने की रेलगाड़ी समझता हूँ। इसी लिये सरकार स्वर्ग पहुँचाने का किराया (शराब टैक्स) वसूल किया करती है।

* * *

देवीसिंह नामक "सिद्ध" से मेरा परिचय है। आप किसी समय बम्बई में सुप्रसिद्ध ठेकेदार थे। आपने एक ही साल में ५० हज़ार रुपये कमाये परन्तु "पत्रं पुष्पं फलं तोयं" के अनुसार 'अर्थ' की ममता त्याग सब कुछ 'देवी' के अर्पण कर दिया। संसारी पुरुषों की तरह विषयों में ले जाने वाले अर्थ का सञ्चय नहीं किया। पूजापाठ से देवी प्रसन्न हो गई। आप को 'चिर-निर्विकल्प-समाधि' सिद्ध हो गई। दीन दुनियां का तांता टूट गया। अधर्मी डाक्टरों ने बहुत विघ्न डाले पर साधक की समाधि न टूटी। सांसारिक बन्धन टूट चुके हैं। जीव और ब्रह्म का

भेद भी मिटने वाला है। आशा है कि आप शीघ्र ही 'ब्रह्म-पद' पहुँच जायँगे।

* * *

यह देख कर मेरी देवी में भक्ति पहिले से सौगुना होगई है। मेरी समझ में हरेक कांग्रेसमैन को, अपितु हरेक भारतवासी को, रोज़ एक पेग चढ़ा लेना चाहिये, इससे हमारी लुप्त होती हुई अध्यात्मविद्या बच जायेगी। पहिले हरेक को संध्या, यम, नियम, योग सिखाये जाते थे। अब कलियुग के प्रताप से लोगों को फ़ुरसत नहीं है। न कोई सिखाने वाला है और न कोई सीखने वाला है। पेट बढ़ जाने से आसन और प्राणायाम ही सिद्ध नहीं होते, समाधि का तो किस्सा ही न छेड़िये। अब कलियुग में यह 'समाधि-सिद्धकारी-मिक्श्चर' ही अवलम्ब रह गया है।

* * *

इस लिये मेरा प्रस्ताव है कि एक 'अखिल-भारतीय-समाधि-सिद्ध-कारिणी-सभा' खोली जाय। इस की शाखायें गाँव गाँव में हों। लोगों को प्राचीन लुप्त अध्यात्म विद्या के रहस्य इस के द्वारा समझाये जाँय। यह बात ठीक है कि इस महान् कार्य के लिये बहुत कम लोग अग्रसर होंगे पर इतना निश्चय है कि देवी के सच्चे भक्तों की संख्या बहुत हो जायगी। प्रचारक कम होंगे पर प्रचार ज़्यादह होगा। कांग्रेस के प्रचारकों की तरह नकली प्रचारक न होंगे। वे सच्चे देवी के उपासक होंगे। इसके अलावा स्वराज्य की समस्या भी खुद हल हो जायेगी। जब सब लोग सदेह स्वर्ग (जेल) पहुँच जायेंगे तो स्वराज्य भी हुआ ही हुआ है। मेरी समझ में जेल जाने का यह सत्याग्रह से अच्छा तरीका है। सरकार देवी को रोक भी नहीं सकती क्योंकि दोनों की पुरानी दोस्ती है। इस लिये हमें चाहिये कि देवी-भक्ति करते हुए जेल जांय। इस में अध्यात्म और राजनीति का समन्वय है। जहाँ एक तरफ़ प्राचीन विद्या का उद्धार होता है वहाँ स्वराज्य भी मिलता है। एक पन्थ दो काज। "किं बहुना विदुषामग्रे"।

दुराचार की चिकित्सा

(लेखक—श्री डा० राधाकृष्ण जी बी. एस सी., एम. बी. बी. एस.)

यह दो प्रकार की है:—

(१) अवरोधात्मक (प्रिवेन्टिव)

(२) अनवरोधात्मक (ऐक्चुअल)

अवरोधात्मक-चिकित्सा

(१) भोजन चिकित्सा

भोजन ऐसा होना चाहिये जो उत्तेजक न हो परन्तु सुपच और पुष्टिकारक हो। मांस, मदिरा, चाय, काफ़ी इत्यादि का सेवन करना सर्वथा वर्जित है। दूध सब से उत्तम भोजन है क्योंकि जहाँ यह एक पूर्ण भोजन है वहाँ यह सुपच और सात्विक भी है। अर्थात्, यह रक्त के दबाव को बढ़ाता नहीं है। भोजन चिकित्सा अत्यन्त आवश्यक है।

संक्षेपतः निम्न बातों का ध्यान रखना चाहियेः—

(१) वे भोजन करने चाहियें जिन में हमारी रुचि हो।

(२) एक समय कई प्रकार के भोजन न करने चाहियें। एक समय एक ही प्रकार का भोजन करना बहुत उत्तम है।

(३) सर्वदा भोजन तभी करे जब कि पर्याप्त भूख लगी हो क्योंकि बिना भूख के खाने से अमृत भी विष हो जाता है।

(४) मिर्च और मसाले उत्तेजक होने के कारण वर्जित हैं। नमक भी कम खाना चाहिए।

(५) जहाँ तक हो सके भोजन अपने प्राकृतिक रूप में खाने चाहियें। जैसे गन्ने का रस पीने की अपेक्षा उस का चूसना बहुत लाभदायक है।

(६) जहां तक संभव हो भोजन पकाना न चाहिए क्योंकि इस से पोषक पदार्थ (वेटमेन्स) नष्ट हो जाते हैं। यदि पकाना पड़े तो घी या तेल में तल कर कभी न खाना चाहिए।

(७) फल, हरी सब्ज़ी और दूध का अधिकतर सेवन करना चाहिये।

(८) मांस सर्वदा वर्जित है क्योंकि इस से जीवन अस्थिर और छोटा हो जाता है तथा सहन शक्ति और साहस बहुत घट जाते हैं।

(९) पक्ष में एक वार उपवास अवश्य करना चाहियें।

थोड़े में कहें तो भोजन कठोर और सादा होना चाहिये। कठोर इस लिए क्योंकि स्वभावतः चबा कर खाना पड़ता है जिस से लार (सेलाइवा) अपना कार्य कर सकता है।

भोजन करने की रीति का जानना भी आवश्यक है। भोजन सर्वदा शान्ति पूर्वक स्वच्छ स्थान पर धीरे २ चबा २ कर करना चाहिये। झट उसी समय भोजन करना छोड़ देना चाहिये जब कि आमाशय भरने का प्रथम अनुभव हो जिस का कि अभ्यास से पता लग जाता है।

(२) शारीरिक अवस्था

भोजन से उतर कर, उत्तम शरीर, दुराचार से बचाता है। दुराचार एक गिरावट का मार्ग है अतः बड़ा सुगम है। सदाचार उच्च मानसिक अवस्था का चिन्ह है और स्मरण रहे कि उत्तम मस्तिष्क सदा उत्तम शरीर में ही रह सकता है। उत्तम शरीर का मतलब केवल बल ही नहीं प्रत्युत् यह भी है कि किसी काम को मनुष्य एकाग्रता से कितनी देर तक कर सकता है। अर्थात्, उस में सहन शक्ति, धैर्य और बल कितना है। अमेरिका के येल विश्वविद्यालय में परीक्षणों द्वारा यह पता लगाया गया है कि सदाचारी यद्यपि दुराचारियों से बहुत बलवान् न भी हों परन्तु उन से ज्यादह निरन्तर कार्य कर सकते हैं। इस से स्पष्ट है कि शक्ति का योग (समय × कार्य) सदाचारियों में दुराचारियों की अपेक्षा अधिक होता है। उत्तम शारीरिक अवस्था प्राप्त करने के लिए व्यायाम, पूरी नींद, हलके सछिद्र रंगरहित कु-

पड़े और ब्रह्मचर्य का सेवन करना चाहिए।

व्यायाम इस प्रकार का करना चाहिये जिस से हृदय धीरे २ बलवान् होता रहे, अर्थात्, उस पर बहुत और सहसा भार न पड़ जावे तथा जब तक शरीर काम करता रहे तब तक हृदय साथ देता रहे। परीक्षणों से पता लगा है कि ये गुण हमारे आसनों में अधिकतर पाये जाते हैं। व्यायाम ऐसा करना चाहिए कि जिस से पेशियें सख्त न हो जावें परन्तु विश्राम की अवस्था में बड़ी कोमल और कार्य करने पर लोहे जैसी कठोर हो जावें। अर्थात्, उन में संकोच और विकास की शक्ति पर्याप्त मात्रा में हो। आसनों में यह गुण भी मिलता है। हृदय और पेशियों को बलवान् करने के साथ २ फुफ्फुस का भी शक्तिशाली बनाना अत्यन्त आवश्यक है। यह स्वच्छ खुले स्थान में प्राणायाम करने से हो सकता है। प्रत्येक व्यक्ति की कम से कम ३ इन्च छाती फूलनी चाहिये।

(३) मानसिक अवस्था

वैसे तो उत्तम शरीर भी आत्मविश्वास उत्पन्न कर के मानसिक अवस्था की उन्नति में सहायक होता है परन्तु सदाचार के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि मन स्थिर और एकाग्र हो। यह गुण उत्तम विषयों पर मनन करने से आ सकता है। योगाभ्यास बहुत उपयोगी है यदि शारीरिक अवस्था को भुला न दिया जावे। मानसिक अवस्था की उन्नति के लिए सत्संग, उत्तम दृश्यों का देखना, कभी २ एकान्त सेवन, उपवास, स्वाध्याय, संध्या और सदुपदेश श्रवण भी बहुत लाभदायक हैं।

(४) सदाचार शिक्षण

सदाचार के भावों की वृद्धि के लिये शिक्षण अत्यन्त आवश्यक है। प्रारम्भिक अवस्था में बच्चों को ऐसे स्थानों से हटा लेना चाहिये जहाँ दुराचार सम्बन्धी बात-चीत, दृश्य इत्यादि की संभावना हो। अतः एकान्त सेवन और स्थिर निरीक्षण की अत्यन्त आवश्यकता है। सदाचार शिक्षण का तब तक कोई लाभ नहीं जब तक कि गुरु और अध्यापकों का अपना आचार शुद्ध न हो क्योंकि आचार सदा अनुकरण करने से उन्नत होता है। सदाचार शिक्षण में शारीरिक दण्ड का प्रयोग बहुत कम करना चाहिये क्योंकि जहाँ इस से अंग-भंग होने का भय है वहाँ मार खा खा कर कभी २ बच्चों में लिङ्ग-सम्बन्धी दोष भी उत्पन्न हो जाते हैं। विशेषतः जब कि दण्ड नितम्ब और गालों पर दिया जाता है। परन्तु सदाचार शिक्षण के लिये दण्ड देना सर्वथा वर्जित नहीं है क्योंकि दण्ड मिलने पर बच्चों को पता लग जाता है कि दुराचार से एक यह भी हानि है। सर्वदा भर्त्सना और ताड़ना हानिकारक है। जहाँ हमें बच्चों को दुराचार की हानि बताने के लिए कभी २ दण्ड देना चाहिये वहाँ सदाचार के लाभ बताने के लिये कभी २ प्रशंसा

और इनाम भी देना चाहिये। यह ध्यान रहे कि सर्वदा प्रेम और कोमलता बच्चों को दुराचारी बना देते हैं। अध्यापकों का व्यवहार कोमल और दृढ़ होना चाहिये। सदाचार की शिक्षा देते समय इस बात का निश्चय कर लेना चाहिये कि बालक पूरा बदमाश तो नहीं है। यदि हो तो उस के लिये उत्तम स्थान पागलख़ाना है।

(५) कार्य्यतत्परता

बच्चों को सर्वदा किसी न किसी काम में लगाये रखना चाहिये। इस में कोई सन्देह नहीं कि एक ही प्रकार का कार्य बहुत समय तक करते रहने से थकावट आ जाती है परन्तु कई प्रकार के कार्य बदल बदल कर करने से मन लगा रहता है। तथापि इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि बालक बुरी तरह थक न जावें। कार्य-तत्पर रखने के लिये विद्यालय के अतिरिक्त समयों में आलेख्य, भजन, बढ़ईगिरी तथा अन्य शारीरिक श्रम के कार्य लाभदायक हैं।

(६) रोग-रक्षा

निम्न लिखित रोगों से उसे बचाना चाहिये।

(क) कब्ज या मलबन्धः— इस के लिये अच्छे भोजन के अतिरिक्त निम्न बातों का ध्यान रक्खें। प्रातः उठते ही एक गिलास जल घूंट घूंट कर के पीवें परन्तु जिन को हृदय के रोग हों उन को इस से सावधान रहना चाहिये। अनीमा तथा साधारण औषध-जैसे पैराफ़ीन का तेल, मधुयष्ट्यादि चूर्ण का सेवन करना चाहिये। पेट की मालिश करने से कब्ज़ी का निवारण होता है। यदि कब्ज़ी चिरस्थायी हो तो मैकफैडन की विधि उत्तम है। अर्थात्, व्यायाम के मध्य में कई बार गर्म नमकीन जल का सेवन करें।

(ख) भरे हुए मूत्राशय और आमाशयके साथ सोना हानिकारक है क्योंकि इससे प्रायः स्वप्न-दोष हो जाता है।

(ग) नेत्र रोग हो तो इन्हें अवश्य ठीक करवा लेना चाहिए।

(घ) मूत्रेन्द्रिय को स्वच्छ रखना चाहिये।

अवरोधात्मक चिकित्सा

यदि कोई दुराचारी हो जावे तो उपरोक्त चिकित्सा के अतिरिक्त निम्न-लिखित चिकित्सा के करने की भी आवश्यकता होती है:—

(१) रोगी को बुरी संगत से तत्काल हटा लेना चाहिये। विदेश पर्यटन आवश्यक है तथा एकान्त सेवन सर्वथा वर्जित है। सत्संग, उत्तम पुस्तकों का पाठ और उत्तम दृश्यों का देखना लाभदायक है। परन्तु नाटक, सिनेमा हानिकारक हैं। रोगी को ऐसे स्थान पर रखना चाहिये जहाँ वह स्त्रियों को न देख सके।

(२) रोगी को किसी कार्य में तत्पर रखना बहुत आवश्यक है। उसे रोग की अवस्था के अनुसार कार्य देना चाहिये। काम लेने में चतुरता, को-

मलता और दृढ़ता का होना आवश्यक है।

(३) प्रारम्भ में पर्याप्त उपवास कराना चाहिये, तदनन्तर केवल दूध और फल देने चाहियें। ज्यों ज्यों उस की मानसिक अवस्था उन्नत होती जावे त्यों त्यों भोजन की मात्रा और गरिष्ठता भी बढ़ाते जावें परन्तु उत्तेजक भोजन सर्वथा वर्जित हैं।

(४) जब शारीरिक अवस्था अच्छी हो जावे तो व्यायाम, प्राणायाम और योगाभ्यास करवाने चाहियें परन्तु ऐसा न हो कि सब काम सहसा आरम्भ किये जावें।

(५) रोगी को पूरी नींद लेनी चाहिये। इसके लिये यदि सोने से पहले ठंडे जल से रोगी को स्नान कराया जाय और लघुशंका के लिये भी भेजा जाय तो उत्तम हो, ताकि सोने से पहले उस का मूत्राशय खाली रहे। रोगी को सीधा न सोने देना चाहिये, किसी करवट सुलाना लाभदायक है। प्रातः ज्यों ही रोगी की नींद खुले त्योंही रोगी को उठा देना चाहिये।

(६) स्नान रोगी की मानसिक अवस्था पर बहुत प्रभाव डालता है। यह ठण्डे जल से करवाना चाहिये तथा इस के पीछे शुष्क कपड़े से शरीर भली प्रकार पोंछना लाभदायक है। उष्णपाद स्नान (हौट-फ़ूट-बाथ) और शीत नितम्ब-स्नान (कोल्ड-हिप-बाथ) भी लाभदायक हैं।

(७) तीव्र और भयंकर अवस्थाओं में रोगी को नपुंसक करना उत्तम है जिस से रोगी अपने जैसी बुरी सन्तान उत्पन्न न कर सके। यदि विवाह ही न किया जाय तो अच्छा है अन्यथा पुरुषों में अण्डधारक रज्जु (स्पर्मेटिक कोर्ड) को बाँध देने से बड़ी सुगमता से नपुंसक किया जा सकता है।

(८) औषधि-चिकित्साः—
निम्नलिखित औषधियाँ लाभदायक हैं:—

(१) पोटासियम ब्रोमाइड
(२) सोडियम ब्रोमाइड
(३) अमोनियम ब्रोमाइड
(५) स्पृट क्लोरोफ़ार्म
(३) टिंक्चर बैलाडुना
(७) टिंक्चर हायोसियामस.

यदि रोगी का मूत्र बहुत अम्ल क्रिया वाला हो तो सोडा बाईकार्ब देना चाहिए।

तीव्र अवस्थाओं में टिंक्चर ओपियाई और मौरफ़ीन का इन्जेकशन करना लाभदायक है।

निम्नलिखित आयुर्वेदिक औषधियें भी इस के लिये उपयोगी हैं:—

(१) सौंफ़
(२) तवाशीर
(३) इलायची
(४) इन्द्र जौ
(५) चाँदी का वर्क
(६) धनियाँ
(७) कमर कस
(८) चने
(९) लस्सी

बहुत भयंकर और असाध्य रोगियों का सब से अच्छा इलाज पागलखाना ही है।

गङ्गा की बाढ़

(पं० वागीश्वर जी विद्यालङ्कार)

क्या व्योम में हैं पंख वाले शैल काले घूमते
या मत्त दिग्गज हैं दिगन्तों में निरंकुश झूमते।
क्या सत्व रज को जीत कर सर्वत्र तम है छा रहा
अथवा प्रलय की घोर रातों का प्रबल दल आ रहा ॥ १ ॥

*   *   *   *   *

क्या फूट निकला फोड़ कर पाताल को अंधेर है
या फैलता फुंकार कर यह फनियरों का ढेर है।
क्या काल की काली निराली झंड़ियाँ फहरा रहीं
या गोद से रवि की सुता है गिर रही लहरा रही ॥ २ ॥

*   *   *   *   *

क्या घिर रहा सब ओर दानव राज का परिवार है
या दिख रहा विकराल यह कलिकाल ही साकार है ।
क्या भूल कर ये पुष्करावर्त्तक अभी हैं आ रहे
अथवा हमारे पाप ही प्रत्यक्ष हैं मँडरा रहे ॥ ३ ॥

*   *   *   *   *

क्या प्रेतपति के हैं भयंकर भूरि भैंसे भागते
या फिर रहे हैं पड़ितों के शाप जीते जागते।
क्या आज शंबरराज ने निज जाल है फैला दिया
अथवा किसी मायावि ने दुर्ज्ञेय जादू है किया ॥ ४ ॥

*   *   *   *   *

क्या नीलकण्ठेश्वर अकुण्ठित चण्ड-ताण्डव कर रहे
उनकी जटाओं के विकट हैं जूट जाल बिखर रहे।
या विश्व कर्मा चित्र अम्बर में बनाने के लिये
यह पृष्ठ काला कर रहा है बत्तियों से देखिये ॥ ५ ॥

*   *   *   *   *

क्या विश्व की रंग स्थली में शीघ्र ही नाटक नया
दुःखान्त कोई खेलने को काल नट है आ गया।
आकाश में कैसी अलौकिक चाँदनी नीली तनी
नीली जवनिकायें पड़ीं शोभा अनोखी है बनी ॥ ६ ॥

इस भाँति सब के लोचनों को चिर-चकित करते हुवे
सब ओर से घन घोर घन घुमड़े सलिल झरते हुवे।
क्या मन्दराचल से मथित यह सिन्धु करता शोर है
या गूंजता गिरिराज में मृगराज का रव घोर है ॥ ७ ॥

* * * * *

क्या चोट खाकर वज्र की गिरि रो रहे सब ओर से
या ये करोड़ों ही नगाड़े बज रहे हैं ज़ोर से।
इस छोर से उस छोर तक यूं दमकती है दामिनी
मानो उगलती जा रही है आग यह नट-भामिनी ॥ ८ ॥

* * * * *

क्या हो रहा फिर आज देवासुर महा-संग्राम है
बादल न ये पर अग्निबाणों का धुंआ उद्दाम है।
बूंदें नहीं ये किन्तु तीरों की प्रबल बोछार है
ये गरजते घन हैं न, छुटता वज्र बारंबार है ॥ ९ ॥

* * * * *

सब हो रहे हैं एक,जल-थल, लग गई ऐसी झड़ी
पथ भूल कर आकाश गङ्गा आज है क्या गिर पड़ी।
भरपूर भूतल पर बरसता वारि मूसल धार है
क्या धान लेकर कूटता यह वरुण का परिवार है ॥ १० ॥

* * * * *

क्या आज ऐसा बरस कर यह फिर न बरसेगा कभी
क्या चार भूतों की मिटा देगा जगत से बात भी।
क्या भूमि भर को क्रोध से सागर बना देगा अभी
क्या सोख कर सारा सलिल सागर सुखा देगा सभी ॥ ११ ॥

* * * * *

कितने दिनों से सूर्य भी शश-शृङ्ग सा है हो गया
इन बादलों से हार कर क्या मुंह छिपा कर सोगया।
क्या घोर घन-वन में भटक कर वह कहीं है खो गया
हर लेगया है तेज उसका भी ऋतु-ज्वर-रोग या ॥ १२ ॥

* * * * *

वह सामने भागीरथी है देखिये अठला रही
लहरा रही, छहरा रही, घहरा रही, भहरा रही।
कल थी वियोगिन सी मलिन मन, छीन तन दिखला रही
वह आज प्रिय उपकण्ठ से मिल कर परम सुख पा रही ॥ १३ ॥

उठतीं तरँगें तुंग हैं स्वाधीनता से खेलतीं
जो वस्तु आगे आगई, ले जारही हैं ढेलतीं।
कल-गान करतीं, पवन से पहचान करतीं, झूलतीं
चलतीं, मचलतीं हैं विचलतीं हर्ष से हैं फूलतीं॥ १४॥

* * * * *

'हैं! किन्तु यह क्या बात'—चारों ओर पानी घिर गया
सब के प्रमोदामोद पर इक साथ पानी फिर गया।
क्षणमात्र में ही छोड़ कर वर रूप ये मायाविनी
'सूरप-नखा' सी हो गई उद्धत महा-भयदायिनी॥ १५॥

* * * * *

'अति है बुरी सर्वत्र'-क्या यह ही सिखाने के लिये
अथवा भयंकर रूप ही अपना दिखाने के लिये,
तट तोड़ कर, झट छोड़ कर सीमा, निकट-गृह फोड़कर
बढ़ने लगी है, देखती पीछे नहीं मुंह मोड़ कर॥ १६॥

* * * * *

गिरने लगी दीवार गल-गल कर धड़ा-धड़ ज़ोर से
हैं शब्द भीषण आरहे, इस ओर से उस ओर से।
काली अमावस की छटा, उस पर घिरी है घन-घटा
आकाश है पड़ता फटा, आतंक है आकर डटा॥ १७॥

* * * * *

भूले अशन, भीगे वसन, बजते दशन हैं शीत से
सब ढूंढते फिरते शरण हैं मरण से हैं भीत-से।
छुटती नहीं ममता किसी से देह की, निज गेह की
धन धान्य में है मन लगा, स्थिति वृक्ष में है देह की॥ १८॥

* * * * *

गृह हीन दीन बिलख रहे नर और नारी हैं सभी
हे नाथ! दिखलाना हमें क्या और है तुमने अभी?
यह क्या हुवा! हैं! वृक्ष भी—जिस का सहारा था लिया
जड़ से उखड़ कर गिर पड़ा, चुप-चाप आगे चल दिया॥ १९॥

* * * * *

क्या आज जीवित ही हमें यह नरक में ले जायगा
ऊपर कभी, नीचे कभी, गोते हमें लगवायगा।
बिच्छू विषैले बह रहे हैं, सांप हैं फुंकारते
बढ़ते हमारी ओर ही हैं आ रहे मुंह फाड़ते॥ २०॥

बैठे हुवे ही छप्परों पर लोग कोई बह गये
कोई बिचारे हाय ! तिनके को तरसते रह गये ।
दुख देखने को जन्म-भर बच्चा किसी घर बच रहा
रोना सुनाने के लिये बूढ़ा कहीं पर बच रहा ॥ २१ ॥

* * * * *

कितनी जननियों की भरी वे गोद खाली हो गईं
कितनी सुहागिन आज फूटे भाग्यवाली हो गईं ।
बिछुड़े सहोदर से सहोदर संग सारे छुट गये
है कौन कह सकता-कि-कितने लाल किन के लुट गये ॥२२॥

* * * * *

क्या हाल पशुओं का हुवा ? यह बात ही पूछो नहीं,
जिस ओर जिन की मौत थी वे बह गये बेबस वहीं ।
रोने बिलखते ही हज़ारों दलदलों में गड़ गये
रक्षक न कोई भी बना—सब मर-मरा कर सड़ गये ॥ २३ ॥

* * * * *

हे भगवती भागीरथी ! यह खेल तूने क्या किया
अपने सुतों को नागिनी बन कर स्वयं ही खा लिया ।
तूने सहस्रों ही फनों से वह किया संहार है
जिस ओर देखो- आज करुणा पूर्ण हा-हा-कार है ॥ २४ ॥

* * * * *

निज गोद में सोने हुवों को मारना क्या धर्म है
अथवा छिपा इस कर्म में भी और ही कुछ मर्म है ।
तू हो गई परदेसियों की आज दासी दीन है
देखा न दुनियाँ में कहीं पर दीन का भी दीन है ॥ २५ ॥

सम्पादकीय

बेलगांव कांग्रेस

पिछले दिनों बम्बई में, देश भर के नेताओं ने मिल कर एकता सम्मेलन किया था। सम्मेलन की समाप्ति पर मौलाना मुहम्मद अली ने पिछले साल की महासभा के प्रधान की हैसीयत से देश के भिन्न २ दलों को बेलगांव में अपने २ अधिवेशन करने का निमन्त्रण दिया था। छोटे-मोटों से तो आशा थी ही कि वे बेलगांव में ही आकर जुटेंगे परन्तु लिबरल- फैडरेशन तथा मुस्लिम-लीग से भी पूरी उम्मीद थी कि वे क्रमिक एकता के लाने में अपना हाथ बटाएंगे । इन दोनों दलों के ने-

ताओं ने अपने अधिवेशनों को बेलगांव में न कर के अपनी अनुदारता का खूब खुल कर परिचय दिया है।

बम्बई के एकता- सम्मेलन का प्रत्यक्ष-फल अपरिवर्तनवादी तथा स्वराज्य वादियों का समझौता है। समझौते का रूप मताधिकार में परिवर्तन है। पहले चार आना देकर सब कोई महासभा के सदस्य बन सकते थे, अब प्रतिमास दो हज़ार गज़ सूत देने पर ही किसी व्यक्ति को मेम्बरी के योग्य समझा जायगा। इस सूत को कातने के लिये प्रत्येक व्यक्ति का स्वयं चरखा चलाना आवश्यक नहीं है। ख़रीद कर भी इतना ही हाथ-कता सूत देने पर मेम्बरी के लिये महासभा की शर्त पूरी हो जाती है।

इस समझौते का वास्तविक अभिप्राय क्या है? भाषा बड़ी छलिन है। वह भावों को प्रकट करने के स्थान पर छिपाने का कार्य अधिक करती है। इसी लिये जहां-तहां इस समझौते का अर्थ चरखे की विजय के रूप में उद्घोषित किया जा रहा है। कहा जाता है कि अब से चार आने की जगह दो हज़ार गज़ सूत महासभा की मेम्बरी के लिये आवश्यक शर्त हो गई है। यह ठीक भी है। परन्तु यह कहते हुए इस बात को न भुला देना चाहिये कि मताधिकार के लिये सूत को जो रूप दिया गया है वह स्पष्ट शब्दों में चरखे की विस्तृत माया को समेट लेता है। मोटे शब्दों में कहना चाहें तो कह सकते हैं कि अब सूत का कातना प्रत्येक सभासद् के लिये आवश्यक नहीं है। प्रस्ताव के शब्दों में यह नहीं है, परन्तु इन्हीं भावों के लिये प्रस्ताव का एक २ शब्द चुना गया है और इसी लिये समझौता सम्भव हो सका है।

हमारी सम्मति में बेलगांव की कांग्रेस में महात्मा गान्धी ने अपने आप को बिल्कुल स्वराज्यवादियों के हाथ में दे दिया है। यह कहने में कोई अत्युक्ति न होगी कि इस समय दबे हुए शब्दों में महात्मा गान्धी ने महासभा से अपने कार्य-क्रम को स्थगित करा कर स्वराज्य-वादियों के कार्य-क्रम को मौका दिला दिया है। इस से महात्मा गान्धी के अनुयायी तो असन्तुष्ट हुए हैं परन्तु इसी से महात्मा गान्धी ने देखने वालों के सन्मुख सिद्ध कर दिया है कि वे निरे महात्मा नहीं हैं, अपितु, राजनीति के क्षेत्र में सधे हुए खिलाड़ी हैं।

महात्मा गान्धी ने स्वराज्य वादियों को मौका दिया है। अवस्थाओं को दृष्टि में रखते हुए उन्हें खुले तौर से शायद मन-मानी करने की छुट्टी नहीं दी जा सकती थी, इस लिये जिस प्रकार भी उन के कार्य-क्रम के चलने में स्वराज्य-वादियों को सहायता दी जा सकती थी, वह सब, महात्मा गान्धी ने बड़ी बुद्धि-मत्ता से बेलगांव में दे दी है। अब स्वराज्य-वादियों को अपनी ज़िम्मेवारी समझ कर कार्य करना होगा। जब हम यह सोचते हैं कि महात्मा जी तथा उनके अनुयायियों ने अनिच्छा तथा प्रतिकूल-विचार-धारा के होते हुए भी स्वराज्य-वादियों को काम करने का मौका दिया है तब

तो देशबन्धु दास और पण्डित मोती-लाल नेहरू की ज़िम्मेवारी और भी बढ़ जाती है। उन्हीं के लिये अब तक च-लते हुए देश के कार्य-क्रम को गौण रूप दिया गया है। इस अवसर से लाभ उठा कर यदि उन्हों ने देश में अपनी उपयोगिता सिद्ध कर दी तो इस सम-झौते का लाभ होगा। परन्तु अपनी कृत्कार्यता को परखने से पूर्व, महात्मा गान्धी के कार्य-क्रम ने देश में जो जा-गृति उत्पन्न कर दी थी उस का उन्हें अवश्य ध्यान रखना होगा। हमें आशा रखनी चाहिये कि स्वराज्यवादी अपने उत्तर-दायित्व को भली प्रकार समझते हुए कार्य करेंगे।

शताब्दी पर साहित्य

मथुरा में धूम-धाम से शताब्दी महोत्सव मनाये जाने की तय्यारियाँ हो रही हैं। घर-घर में, प्रतिदिन, प्रातः काल, उत्सव के दिन गिने जा रहे हैं। आर्य-समाजियों का सब से बड़ा मेला होने वाला है। इस समय का लाभ उठा कर आर्य-समाज के माथे से कलङ्क को टीका सदा के लिये दूर किया जा सकता था, परन्तु उस तरफ़ जन्म-शताब्दी-कमेटी का बहुत कम ध्यान गया है। चारों तरफ़ से आवाज़ आ रही है कि आर्यसमाज में साहित्य बहुत थोड़ा है। ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों के अतिरिक्त आर्य-समाज के साहित्य में जो भी ग्रन्थ लिखे गये हैं उन में से थोड़ों को छोड़ कर बाकी को तो सा-हित्य में गिनते हुए भी हमें शर्म आती है। ऐसी अवस्था में इस बहुमूल्य अव-सर का लाभ न उठा कर स्वामी जी के ग्रन्थों को नये कागज़ों पर छापने और उनको नई २ जिल्दें बान्धने की तरफ़ ही अधिक ध्यान दिखाई देता है। हमारे कहने का यह अभिप्राय कभी नहीं कि स्वामी जी के ग्रन्थों का पुनः प्रकाशन रोक दिया जाय। उन का तो जितना भी प्रचार हो उतना ही वैदिक-धर्म का नाम उज्ज्वल होगा। परन्तु उन्हीं की पुनरावृत्तियें छपवाने और सुनहरी जिल्दें बन्धवाने तक ही यदि हमारी दौड़ रही तब तो आर्य-समाज में सा-हित्य की कमी वैसी की वैसी बनी रहेगी। विद्वान् लोगों के आर्य-समाज की तरफ़ न झुकने का मुख्य कारण यह भी है कि हमारे यहां उच्च कोटि के साहित्य का अत्यन्त अभाव है। ट्रेक्टों की संख्या गिजाइयों की तरह बढ़ती चली जा रही है और सम्भवतः शताब्दी के अवसर के लिये भी सकड़ों तीसरे दर्जे के ट्रैक्ट तय्यार हो रहे हों। परन्तु याद रखनी चाहिये कि ऐसी घटिया किताबों की बढ़ती के साथ आर्य-समाज का गौरव घटता चला जा रहा है।

शताब्दी के अवसर पर आर्य-स-माज के अगुओं को साहित्य-वृद्धि करने की तरफ़ जितना ध्यान देना चाहिये था उतना न देते देख कर हमें खेद होता है। क्या यह उचित नहीं कि जिस ऋषि की स्मृति मनाने के लिये हम हज़ारों रुपया ख़र्च कर डालेंगे, सात दिन का मेला कर के घरों को लौट आवेंगे, उस के लिये, साहित्य उत्पन्न करने के रूप में ऐसी

अमिट यादगारें बनाई जातीं जो आर्य-समाज के इतिहास में अपना स्थान स्थिर रूप से ग्रहण कर लेतीं ?

गुरुकुल-वृन्दावन

युक्त-प्रान्त की प्रतिनिधि सभा ने निश्चय कर लिया है कि वे अपने गुरुकुल में ऋषि दयानन्द की पाठ-विधि को अक्षरशः चलावेंगे । इसी हेतु से उन्होंने एक दम शिक्षा-क्रम में परिवर्तन कर दिया है । कार्यकर्ताओं में इसी दृष्टि को लक्ष्य में रखते हुए अपेक्षणीय परिवर्तन किया गया है। वृन्दावन-गुरुकुल की सञ्चालक सभा ने यह कार्य बड़े महत्व का किया है । परन्तु अपने इरादे को क्रियात्मक रूप देते हुए उन्हों ने बहुत जल्दी की है । हमारी सम्मति में इस प्रकार कार्य प्रारम्भ करने की अपेक्षा यदि पहले विद्वानों की सलाह से प्रकृत पाठविधि का निश्चय कर लिया जाता और फिर चलती हुई पाठविधि को स्थगित किया जाता तो अच्छा रहता ।

ऋषि दयानन्द ने जो पाठविधि रखी है उसे भी वर्तमान अवस्थाओं के अनुसार निश्चित रूप देना अन्तरङ्ग या प्रतिनिधि सभा का कार्य नहीं है। इन सभाओं में चुनाव के अनुसार सभासदों का निश्चय होता है । उन सब का शिक्षा के सिद्धान्तों से परिचित होना आवश्यक नहीं है । यदि ऋषि दयानन्द की शिक्षा पद्धति को ही चलाना है तो भी उसे प्रारम्भ करने से पहले उस के सम्भवनीय क्रियात्मक रूप पर भली भांति विद्वानों का विचार हो जाना अत्यन्त आवश्यक है । हम युक्तप्रान्त की अन्तरङ्ग सभा के फैसले की सराहना करते हैं परन्तु सभा के कार्यकर्ताओं के सम्मुख यह परामर्श रखना चाहते हैं कि वे पाठविधि का स्वयं निर्धारण करने की अपेक्षा इस विषय पर भिन्न भिन्न प्रान्तों के योग्य विद्वानों की सलाहों से फ़ायदा उठावें तो अच्छा है ।

गुरुकुल-समाचार

ऋतु उत्तम है। सर्दी अच्छी पड़ रही है। कभी कभी बादल घिर आते हैं, थोड़ी बहुत वर्षा भी हो जाती है। ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य साधारणतः अच्छा है। चिकित्सालय में मामूली ज्वर के एक दो रोगियों के सिवाय कोई रोगी नहीं ।

पढ़ाइयां नियम पूर्वक चल रही हैं। स्नातक परीक्षा ६ फ़रवरी को शुरू होगी। अन्य श्रेणियों की परखपरीक्षायें भी इन्हीं दिनों होंगी । अतएव ब्रह्मचारी परीक्षाओं की तैय्यारी में लगे हुवे हैं। स्नातक परीक्षा को छोड़ कर शेष परीक्षायें शताब्दी महोत्सव के बाद १५ मार्च से होंगी। अधिकारी परीक्षा भी १५ मार्च से ही होगी।

गुरुकुल मुलतान की दशम श्रेणी के ब्रह्मचारी भी पहिले ही यहां आगये हैं और यहीं पर अन्य ब्रह्मचारियों के साथ अपने पाठ खतम कर रहे हैं।

बाढ़ के कारण गुरुकुलभूमि में रेत और मट्टी खूब भर गई है। क्रीड़ा क्षेत्रों में भी एक डेढ़ फ़ीट रेत भर गई थी। ब्रह्मचारियों ने परिश्रम कर के दो क्रीड़ा क्षेत्र बिलकुल साफ़ कर लिये हैं—उन में नित्य सायंकाल नियम पूर्वक खेल होते हैं। एक तीसरा क्रीड़ा क्षेत्र भी प्रायः साफ़ हो चुका है। ब्रह्मचारियों का यह परिश्रम अत्यन्त सराहनीय है। एक दो वर्षायें पड़ जाने से अब इन में घास भी पर्याप्त उग आयी है।

बाढ़ के कारण गिरे हुवे मकानों की मरम्मत शुरु होगयी है। जो मकान बिलकुल रहने योग्य नहीं रहे उन्हें तो अब खड़ा करना व्यर्थ ही है—क्योंकि कांगड़ी की भूमि से गुरुकुल को उठा लेना अब प्रायः निश्चित ही हो गया है। जो मकान अभी रहने लायक हैं उन्हें काम लायक बनाया जा रहा है।

गुरुकुल को भविष्य में कहां रखा जावे, इस बात का अभी अन्तिम निर्णय नहीं हुवा। प्रतिनिधि सभा के साधारण अधिवेशन में कोई निर्णय न हो सका था। उसके बाद अन्तरंग सभा ने अपनी बैठक कर सर्वसम्मति से यही निश्चय किया है कि गुरुकुल को कांगड़ी की भूमि से उठा लिया जावे, पर उसे हरिद्वार के आस पास कहीं रखा जावे। इस हरिद्वार के आस पास स्थान का निश्चय करने के लिये डाकृरों का कमीशन भी बनाया गया है। वह कमीशन भूमि को देख चुका है पर अभी उसने अपनी लिखित सम्मति नहीं दी।

भूमि के सम्बन्ध में अन्तिम निश्चय जनवरी के अन्त में प्रतिनिधि सभा के साधारण अधिवेशन में ही होगा। कमीशन की रिपोर्ट भी संभवतः उस में पेश होगी। पर अधिक सम्भावना यही है कि ज्वालापुर के पास गुरुकुल को रखने का निश्चय किया जावेगा।

इस वार गुरुकुल का महोत्सव शताब्दी के कारण होली के दिनों में न होकर ईस्टर की छुट्टियों में होगा। बाढ़के कारण उत्सव गुरुकुल भूमि में होना कठिन है। अतएव मायापुर वाटिका में ही उत्सव करने का निश्चय किया गया है

पिछले दिनों सभाओं की खूब रौनक रही। प्रति वर्ष अखिल भारतीय राष्ट्र महासभा के दिनों में यहां भी कांग्रेस का अधिवेशन वाग्वर्धिनी सभा की ओर से किया जाता है। इस वार भी यह खब धूम-धाम से किया गया। कांग्रेस के प्रधान, उपाध्याय देवराज जी सेठी थे। कांग्रेस का अधिवेशन चार दिन तक हुवा। कई आवश्यक प्रस्ताव स्वीकृत हुवे। खद्दर के मताधिकार का प्रस्ताव भी पेश हुवा पर बहुत विवाद के बाद गिर गया। इसके साथ गुरुकुल में चर्खे और खद्दर को सर्व प्रिय बनाने का प्रस्ताव स्वीकृत हुवा। इन प्रस्तावों के अतिरिक्त बङ्गाल आर्डिनांस, प्रवासी भारतीयों तथा ऐसे ही अ-

न्यान्य विषयों पर प्रस्ताव स्वीकृत हुवे।

इसके अतिरिक्त वाग्वर्धिनी सभा का जन्मोत्सव भी पिछले सप्ताह बड़े समारोह के साथ मनाया गया। स्नातक सत्यकेतु जी विद्यालंकार इसके सभा पति थे। सभा के अन्त में एक सहभोज भी हुवा।

गुरुकुल जन्मोत्सव की तिथि इस वार जन्मशताब्दि के उत्सव के बीच में ही पड़ती है। परन्तु उस समय अन्यान्य कार्यों के कारण वहां पर 'जन्मोत्सव' मनाना कठिन है अतएव १३ फ़रवरी को (१ फाल्गुन शुक्रवार) गुरुकुल जन्मोत्सव गुरुकुल-भूमि में ही मनाने का निश्चय किया गया है। सम्भवतः कांगड़ी भूमि में यह अन्तिम जन्मोत्सव ही होगा-अतः यह आशा की जाती है कि कम से कम स्नातक भाई तो अवश्य ही इस वार अधिक संख्या में उपस्थित होंगे। जन्मोत्सव मनाने के बाद ही सब कुलवासी शताब्दि महोत्सव के लिये यहां से चल पड़ेंगे।

उपाचार्य रामदेव जी अफ़्रीका से शीघ्र ही लौटने वाले हैं। वे सम्भवतः ७ फ़रवरी को बम्बई उतरेंगे।

शाखाएँ

सभी गुरुकुलों के उत्सव समीप आ रहे हैं। बची हुई पढ़ाइयाँ समाप्त हो रही हैं और परीक्षाओं के लिए तय्यारियाँ हो रही हैं। गुरुकुल कुरुक्षेत्र के उत्सव का अभी कुछ तय नहीं हो पाया। इन्द्रप्रस्थ का उत्सव सम्भवतः होलियों की छुट्टियों में मनाया जायगा। रायकोट गुरुकुल के वार्षिकोत्सव की तिथियां २७-२८-२९ जनवरी निश्चित की गई हैं। सूपा (गुजरात) गुरुकुल का उत्सव ५-६-७ फर्वरी को होगा। प्रो० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार गुरुकुल कांगड़ी से, इन्द्रप्रस्थ, सूपा तथा रायकोट, तीनों गुरुकुलों के उत्सवों पर सम्मिलित होंगे।

कुरुक्षेत्र गुरुकुल में महाशय धर्मदेव जी विद्यार्थी सहायक मुख्याधिष्ठाता तथा पं० सोमदत्त जी विद्यालंकार मुख्याध्यापक का कार्य बड़ी योग्यता से सम्पादन कर रहे हैं। इन्द्रप्रस्थ में पं० अमीचन्द्र जी विद्यालङ्कार के अधिष्ठातृत्व में गुरुकुल बहुत सन्तोष-जनक उन्नति कर रहा है। पं० ईश्वरदत्त जी विद्यालङ्कार बहुत देर तक रुग्ण होने के कारण सूपा गुरुकुल से बाहर रहे परन्तु अब वे वहीं पहुँच गये हैं और उन्होंने अपने कार्य को सम्भाल लिया है। पं० ईश्वरदत्त जी (भिषक्) विद्यालङ्कार हरियाने के आस पास जन्म-शताब्दी के उपलक्ष्य में 'अष्टाध्यायी- विद्यापीठ' खोलने वाले हैं जिस में ऋषि-दयानन्द की पाठ-विधि के अनुसार पठन पाठन होगा।